सितम्बर 2015 वार्षिक मूल्य ₹ 150

साधन

संस्थापक : समर्थ गुरु परम संत डा. चतुर्भुज सहाय जी

ॐ

रामाश्रम सत्संग, मथुरा

ॐ

साधन

सितम्बर-2015

अनुक्रमणिका

ॐ

साधन

वेद-मंत्र

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्चन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम।।
तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते। विष्णोर्यत्परमं पदम्।।

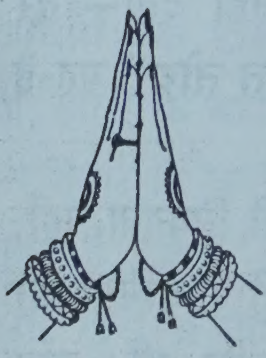
— ऋग० 1/22/20-21

ज्ञानीजन विष्णु के परमपद को आकाश में फैले प्रकाश की भाँति देखते हैं तथा जागरूक और सावधान साधक उसे अपने हृदय में प्रदीप्त करते हैं। हे प्रभो ! हमें भी अपना परमपद दिखा। हमें भी उस अमृत कूप का मधुर जल पिला।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

वर्ष : 83 अंक : 02	सितम्बर-2015	वार्षिक मूल्य : ₹ 150.00 इस अंक का : ₹ 16.00

-: संत महिमा :-



चारि वरन सूँ हरिजन ऊँचे।
भये पबित्तर हरि के सुमिरे तन के उज्जल मन के सूचे।
जो न पतीजै साखि बताऊँ सबरी के जूठे फल खाये।
बहुत ऋषीसर ठांई रहते तिनके घर रघुपति नहिं आये॥
भिल्लनि पाँव दियो सरिता में सुद्ध भयो जल सब कोई जाने।
मन्द हुतो सो निरमल हूबो अभिमानी नर भयो खिसाने॥
ब्राह्मन क्षत्री भूप हुते बहु बाजो संख सुपच जब आयो।
बाल्मीक जब पूरन कीन्हों जैजैकार भयो जस गायो॥
जाति बरन कुल सोई नीको जाके होय भक्ति परकास।
गुरु 'सुकदेव' कहत हैं तो को हरिजन सेब चरन हीं दास॥



— सन्त श्री चरणदास जी

अमृत बिन्दु

प्रेमी हृदय-श्री धनुर्दास जी

—परमपूज्य गुरुदेव

जहाँ जल भरा होता है, वहाँ की मिट्टी नरम, लोचदार और कोमल होती है, जहाँ जल नहीं, वहाँ सूखी कठोर मिट्टी निकलती है जो बिना जल की सहायता के कुम्हार के किसी काम नहीं आती, उसका गढ़ना और उसे नई शकल में ढालना कठिन हो जाता है। प्रेम एक जल है जो हृदय में कोमलता और लचक पैदा करता है। ईश्वर, प्रेमियों को ही मिला है, जो अगर मगर में पड़े रहते हैं, थोथे तर्क बघारा करते हैं, वह खुश्क मिट्टी के पात्र हैं, ऐसों के लिए प्रभु दूर हैं। देवों को भगवान की तलाश थी, वह कभी वन पर्वतों में चक्कर काटते, कभी क्षीर सागर में ढूढ़ने जाते, शिव जी वहाँ आ गये, देवों के पूछने पर वह बोले-जिन्हें तुम ढूढ़ रहे हो, वह कहाँ नहीं हैं, तुम्हारे भीतर हैं, तुम्हारे बाहर हैं, संसार के कण-कण में वह व्यापक हैं, परन्तु जैसे दही में मक्खन छिपा रहता है, विलोने पर वह बाहर आता है, इसी प्रकार अपने हृदय की मथनी बनाओ, श्रद्धा की रई उसमें डालो और प्रेम की रस्सी से उसे चलाओ, वह प्रगट हो जायेंगे। रामायण में यह प्रसंग आया है, वह अपनी काव्यमयी वाणी में शिव जी के शब्दों का इस प्रकार वर्णन करती है—

"हरि व्यापक सर्वत्र समाना।
प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना॥"

श्री कबीर साहब भी अपने साधकों को उपदेश दे रहे हैं—

"प्रेम भाव एक चाहिये, भेष अनेक बनाय।
चाहे घर में बास कर, चाहे बन में जाय॥"

प्रेम में होश नहीं रहता, इसकी बूंद गले से नीचे उतरते ही मदमस्त बना देती है, प्रेमी को दीन दुनिया किसी की खबर नहीं रहती वह एक ओर को ही पूर्ण रूप से खिंच जाता है, वह न अपने को देखता है, न दूसरों को, दूसरा क्या कह रहा है, अपने को क्या कष्ट हो रहा है, नतीजा क्या होगा इत्यादि, इन बातों की ओर प्रेमी का ध्यान स्वप्न में भी नहीं जाता। उसके अन्दर तो एक अग्नि जलती रहती है जिसके धुयें से उसकी बुद्धि ढक जाती है, सोच विचार की शक्ति नष्ट हो जाती है। प्रेमी को अपने प्यारे के मुखड़े के सिवाय कहीं कुछ दिखाई ही नहीं देता—**"दर दीवार दर्पण भये जित देखूँ तित तोय"** यह है प्रेम की पहचान।

पर इस प्रेम की धार का भी ठिकाना नहीं, यह किसी दिशा में भी चल सकती है, दुनिया की ओर, दुनिया के मालिक की ओर भी। जब दुनिया की ओर झुक पड़ती है तो उसका नाम है-'इश्क मज़ाज़ी' जिसके अर्थ हैं असत्य का प्रेम और जब ईश्वर की ओर यह धार बहने लगती है

तो उसे कहते हैं–'इश्क हकीकी' अर्थात सत् का प्रेम। इस प्रकार इस प्रेम के दो रूप हो जाते हैं।

कोई भी रूप हो, ऐसा हृदय ही आत्म कल्याण के लिये श्रेष्ठ समझा जाता है और ऐसा प्रेमी ही प्रभु का प्यारा बनता है। सूखे और कठोर हृदय को कोई मोड़ नहीं सकता। जिसका प्रेम रस से सना हुआ कोमल हृदय होता है, उसी का पात्र ठीक बनता है, और अमृत जल उसी पात्र में भरा जाता है। महापुरुष लोग ऐसे हृदयों की खोज में रहते हैं और ऐसे प्रेमियों को ही महा अधिकारी समझ उन्हें पार लगाने का उद्योग करते हैं चाहे वह इश्क मज़ाज़ी वाला हो और चाहे इश्क हकीकी वाला। इंजन दौड़ रहा है, उसे घुमाने की देर है वह दूसरी ओर चलने लगेगा। गुरु लोग उस ऐसे जिज्ञासु की परख कर अपनी शक्ति से उसके हृदय का मुख ऊपर को कर देते हैं, वह अधोमुख से ऊर्ध्वमुख हो जाता है और वह उधर को दौड़ने लगता है।

दृष्टान्त

भक्तिमार्ग के आदि आचार्य श्री स्वामी रामानुजाचार्य एक टीले पर विराजमान थे। चैत्र मास था, होली के बाद बसन्त में जब नई फसल पक कर तैयार हो जाती है, लोग खुशी मनाते हैं, मेले लगते हैं, जिन्हें 'फूलडोल' बोला जाता है। नाच-रंग, गाना-बजाना, उल्लास भरी मस्ती में घूमना फिरना इन मेलों में हुआ करता है। भारत वर्ष, ब्रह्मा, जापान, चीन इत्यादि ऐशियाई देशों में ही नहीं, योरुप और अमेरिका के देशों में भी नवीन फसल आने पर बसन्त में ऐसे मेले होते हैं। इंगलैण्ड, फ्रांस, जर्मनी, रूस इत्यादि सभ्य देशों में भी इन मेलों का रिवाज आज भी है। भेद केवल इतना है कि उनके खुशी मनाने का ढंग और है और हमारे देश के ढंग बेहूदा हैं। शराब के दौर चलते हैं, अश्लील गाने गाते हैं, असभ्यता से रचे हुए स्वांग दिखाते हैं इत्यादि। यह सब मूर्खता के परिचय देने वाले काम हैं, यदि हम इसमें सभ्यता लावें तो कितना अच्छा हो।

स्वामी जी ने देखा कि एक ठाकुर प्रतिष्ठित रईस उस मेले में प्रेम के वशीभूत हो अपनी प्रेमिका एक वेश्या के ऊपर छाता लगाये घूम रहा है, नौकर-चाकर पीछे चल रहे हैं, मान-अपमान, नेकनामी की उसे परवाह नहीं, अपने कष्ट की ओर ध्यान नहीं, वह उस समय अपनी प्रेमिका में तन्मय हो रहा था, अपनी सुधि नहीं थी।

स्वामी जी ने विचारा-यह आदमी बड़े काम का है, यदि इसे उधर से हटा के इधर मोड़ दिया जाये तो एक दिन यह बहुत बड़ा महापुरुष बन सकता है। कई प्रेमी बैठे थे, आज्ञा दी, इन दोनों को हमारे पास बुला लाओ। लोग दौड़ गये, ठाकुर से कहा, वह एक साधारण सी बात समझ के चला आया। दोनों आके सम्मुख बैठ गये।

आदर से बिठाया, कुशल-क्षेम पूछी, कुछ इधर-उधर की बातें होती रहीं, इसी बीच में गुरु ने अपनी आन्तरिक शक्ति की एक ठोकर उसके हृदय में लगायी, उसकी धार को जो नीचे को चली जा रही थी, उठा के ऊँचा कर दिया। उसकी आँखें खुल गयीं, चरणों से लिपट गया। अपने अपराधों की क्षमा मांगी। सदैव सेवा में

रहने का वर माँगने लगा। गुरु ने आश्वासन दिया, समय पर यही मुख्य शिष्य उनका उत्तराधिकारी बन गद्दी पर बैठा और लाखों स्त्री-पुरुषों का कल्याण कर गया। इनका नाम श्री धनुर्दास जी था।

वेश्या भी

सत्संग एक गंगा है, जो इस पतित पावनी सुरसरी में पलमात्र को भी आके डुबकी लगा गया, उसके पाप कहाँ रहते हैं। सत्संग के यज्ञकुण्ड में जलकर भस्म हो जाते हैं। इतनी देर के सत्संग ने उस पतित वेश्या को भी अछूता नहीं छोड़ा, उसके भी विचार बदले, भाव बदले, अपने पर पश्चाताप करती हुई वह रोने लगी। हाथ जोड़ के खड़ी हो गयी, आँसुओं की लड़ी वह रही थी, कण्ठ गदगद् हो रहा था, शरीर रोमांचित था, लड़खड़ाती भाषा में विनती करने लगी—हे प्रभो! मैं अधम और नीच कर्म करने वाली, संसार में पाप फैलाने वाली एक पापि आप जगत् उद्धारक होके इस पृथ्वी तल पर हैं, मैं जिनको प्यार करती थी, जिनसे जीवनयापना चलती थी, उनको आपने मु छीन लिया, तो मुझे न ठुकराइये, मुझे भी अ शरण में ले लीजिये मैं अब कहाँ जाऊँ? अधमा हूँ, महापापिनी हूँ, पर जब आपके सम आ गई तो मेरे पाप कहाँ रहे, मुझे भी अपने च में स्थान दीजिये। ऐसी विनती करती हुई पृथ्वी पर गिर विलाप करने लगी। गुरु ने उठाया, प्यार का हाथ सिर पर फेरा बोले—"हे तेरे आसुओं के जल ने तेरे पापों को धो अब तू पापिन नहीं रही, शुद्ध व निर्मल तेरा ह हो चुका है, तू अधिकारिणी है, दीक्षा ले अपना कल्याण कर।" प्रेमी हृदय को गुरु मात्र में कैसे पलटते हैं इसका उदाहरण आपको सुनाया।

समर्पण—एक स्थिति

यह बात पूर्ण रूप से सही है कि अपने पूर्व जन्म के पुण्य कर्मों एवं परमात्मा की दया के कारण ही ह लोगों को सत्संग की प्राप्ति का अवसर मिलता है फिर भी साधना के मार्ग पर हमें महीनों से लेकर वर्षों त अभ्यास में लगा रहना पड़ता है जिसके पश्चात् ही हम अपने परम पिता के सम्मुख समर्पण के योग्य बन पा हैं और तभी जाकर कोई साधक 'गुरुमत' होने का दावा कर सकता है। इस स्थिति में पहुँचकर साधक क साधना के रूप में बहुत कुछ करना शेष नहीं रह जाता है। गुरु को समर्पित होना या गुरुमत होना एक मानसि स्थिति है जिसकी प्राप्ति एक लम्बे काल तक सतत् साधना या सत्संग से सम्भव हो पाती है। मात्र बातों द्वार मुँह से बोलकर समर्पण करना समर्पण नहीं है। साधना की अवधि में आपको कोई असाधारण अनुभव न भी हो सकता है परन्तु जीवन के दृष्टिकोण में निश्चित रूप से बदलाव आता है। अगर इस तरह का बदला आप अपने अन्दर पाते हैं तो समझिए कि आप सही रास्ते पर हैं।

एक बात सबों को पूर्ण रूप से स्पष्ट हो जानी चाहिए कि साधना या सत्संग संसार के सभी कष्टों व विरुद्ध किसी तरह की बीमा-पालिसी नहीं है। यह केवल सांसारिक घटनाओं के प्रति दृष्टिकोण में परिवर्त लाता है तथा हम लोगों के अन्दर एक तरह की मानसिक शान्ति का सृजन करता है।

सम्पादकीय

अध्यात्म-ईश्वर का व्यक्तिकरण है

अगर हम चाहते हैं कि हमारा सांसारिक जीवन सुन्दर हो और पारमार्थिक जीवन सुन्दर हो तो संतों ने इसका विधान दिया है। उन्होंने कहा कि पारमार्थिक जीवन को सांसारिक जीवन से जोड़ लो। यही अध्यात्म ज्ञान है। जहाँ परमार्थ संसार में उतर जाये वही अध्यात्म ज्ञान है। लेकिन हुआ क्या अनेकों तरह की व्याख्याओं ने इस ज्ञान को कठिन बना दिया। एक बार गीता के रचयिता एवं अनेकों पुराणों के लिखने वाले व्यासजी बहुत उदास खिन्न हृदय से बैठे थे। नारद जी आये देखा व्यासजी बहुत खिन्न बैठे हैं पूछा बात क्या है? व्यासजी ने कहा कि नारद मैंने संसार को इतना ज्ञान दिया लेकिन आज जीवन देखता हूँ तो रिक्तता ही है, अभाव ही है। मैं क्या करूँ? नारद ने व्यासजी से कहा आपने अध्यात्म के ऊँचे सिद्धान्तों को लिखा है लेकिन सरलता नहीं लिखी। बिना सरलता के अध्यात्म ज्ञान समझ में आयेगा नहीं। व्यासजी ने उपाय पूछा तो नारदजी ने उनसे भगवान की कथायें लिखने को कहा। भगवान कृष्ण ने क्या लीलायें संसार में कीं उन कथाओं को लिखो। उन कथाओं में क्या है? जो हमारे ऋषि मुनी थे जो अध्यात्म ज्ञान में बहुत आगे बढ़े उन्होंने भगवान से प्रार्थना की संसार में कैसे रहा जाये। संसार और अध्यात्म ज्ञान को एक साथ कैसे कार्य में लायें? भगवान ने कहा द्वापर में मैं कृष्ण रूप में आऊँगा और आप गोप गोपी रूप में आओ। जानों संसार में कैसे रहा जाये। वही हुआ। लीलायें क्या थीं? भगवान कृष्ण और गोपों का साथ-साथ गाय चराना। वहाँ भगवान कृष्ण का बंसी बजाना। सभी एक अजीब आनन्द में डूबे रहते थे। ख्याल ही नहीं रहता कब दिन हुआ कब रात हुई। सभी प्रेम में निमग्न। जो कठिन ज्ञान था भगवान कृष्ण ने सरलता से उनको प्रदान कर दिया। उन्होंने अनुभव करा दिया कि परमात्मा कहीं बाहर नहीं है। व्यक्ति में परमात्मा उतारा। उसे लेकर चलो। व्यासजी ने महाभारत की रचना की। कृष्ण लीलायें लिखीं। अध्यात्म ज्ञान केवल यही है परमात्मा को व्यक्ति में उतारना। सिद्धान्त तो बहुत हैं। गुरु महाराज के जमाने के एक सत्संगी भाई थे। सरल सहज व्यक्ति थे। सत्संग करते थे। सत्संग करना, रोजाना ध्यान करना उनका काम था। उनका पुत्र जो साइन्स पढ़ता था वह अपने पिता की साधना के खिलाफ था। कहता था कि पिताजी आप समय बरबादी कर रहे हो। बेकार के ढकोसले पाले हो। ईश्वर कहाँ है? दिखाओ मुझे। पिता परेशान हो गये। कैसे समझायें पुत्र को। गुरु महाराज के पास गये। गुरु महाराज ने उनसे कहा पुत्र को मेरे पास ले आना। एक दिन वह ले आये गुरु महाराज के पास। बच्चे से पूछा तुम साईन्स पढ़ते हो। लड़के ने हामी भरी। उन्होंने उससे पूछा कि यह बताओ यहाँ सूर्य चन्द्रमा निकलता है, ऋतुयें आती हैं समय पर फूल खिलते हैं समय पर फल आते हैं। यह करता कौन है? बच्चे ने कहा एक सुप्रीम पावर करता है। ठीक। तुम उसे सुप्रीम पावर अंग्रेजी में कहते हो और तुम्हारे पिता उसे हिन्दी में भगवान कहते हैं फिर विवाद कहाँ? बात एक ही है।

करना क्या है? उसी सुप्रीम पावर को मनुष्य में उतारना है। जहाँ मैं उस भगवान को मनुष्य में उतार दूँगा अध्यात्म ज्ञान आ जायेगा मेरे पास और कुछ नहीं करना। **ईशावास्यमिदम्**। ईश्वर मैं हूँ पर देखा नहीं कभी। आपने पढ़ा होगा रामकृष्ण परमहंस जी मंदिर में माँ काली की पूजा करते थे। उनकी पूजा से माँ साक्षात् विराजमान होती थीं। माँ को भोग लगाते, माँ से बात करते थे। एक महात्मा आये और उनसे कहा तू कहाँ रुक गया भाई। माँ केवल मंदिर में है और कहीं नहीं है? वह उन्हें और आगे ले गये और दिखाया मंदिर में ही माँ नहीं हैं सर्वत्र माँ ही माँ है। सब बदल गया। कलकत्ता की गलियों में भीख मांगती स्त्रियों के चरण पकड़ लेते और रोते हुये कहते थे—''माँ मैंने तेरा कितना सुन्दर श्रृंगार किया था और तू यहाँ फटी साड़ी पहने घूम रही है, भीख मांग रही है?'' वह माँ जो मंदिर में थी उसका विस्तारिकरण हो गया। अब माँ सबमें फैल गई। हर स्त्री माँ, आनन्द फैल गया। आनन्द जो मंदिर में कैद था अब चारों ओर फैल गया। बस करना यही है जिस परमात्मा को आप मानते हैं मनुष्य में उतार दें। उसे मनुष्य में उतार देंगे तो जीवन में रंग भर जायेगा। कारण? हम ने उस नीरस सुप्रीम पॉवर को स्थापित कर दिया, जीवन्त बना दिया। अध्यात्म जीवन में रस भरता है। जैसे ही अपने में ईश्वर उतारेंगे तो आप के नीरस जीवन में रस भर जायेगा। अब मैं भगवान की प्रार्थना करता हूँ, भजन करता हूँ तो मुझे रस मिलता है आनन्द आता है अब। जीवन में रस के लिये भगवान का व्यक्तिकरण जरूरी है। सबमें भगवान को देखो। लेकिन देखे कैसे? आप

किसी भी भक्त का जीवन देखें। गोपियों जीवन देखें। उन्होंने नन्द पुत्र कृष्ण को ई मान लिया। इतना माना कि उसी में निमग्न गयीं। उनके जीवन में आनन्द बरस गया। तक कि इतने ज्ञानी उद्धवजी आते हैं वह क गोपियों तुम क्या कर रही हो? इतना बहुम जीवन मिला है पर कृष्ण के विरह में बर्बाद रही हो। परमात्मा निराकार है निराकार परम का ध्यान करो। गोपियों ने उद्धव से कहा अ परमात्मा निराकार है तो उस परमात्मा का क्या करेंगे? जिसके मुख नहीं है बंसी बजायेगा। उसके हाथ हैं हमारे गायों को च है। पैरों से हमारे साथ नाचता है। आनन्द बर है उसके साथ। तुम्हारा निराकार ब्रह्म यह नहीं कर सकता। क्या करें उसकी उपा करके। वह जीवन जियें कि तुम्हारा नीरस जी जियें। इस जीवन को आनन्द मय बनाना इसलिये हमें हरेक व्यक्ति में ईश्वर देखना शास्त्र बोलते भी हैं 'ईशावास्यमिदम्' पर इस प्रत्यक्ष अनुभव करना होगा। हमें मंदिर भगवान होने का विश्वास है पर व्यक्ति में है। पूज्य पंडितजी महाराज कहते थे सत्संग हजारों लोग खाना खा रहे हैं वास्तव में कौन रहे हैं? आँख खोल के देखो ईश्वर ही खा रहे ईश्वर का व्यक्तिकरण कर दिया। पर यह होगा? कहने से नहीं होगा। हमारे गुरु महाराज यह प्रयास किया कि ईश्वर का व्यक्तिक अनुमान की बात न रह जाये, शास्त्रों के प्रम की बात न रह जाये बल्कि हम सब प्रत्य अनुभव करें कि हम खुद भी ईश्वर हैं और व्यक्ति ईश्वर है तब तक ईश्वर में विश्वास न होगा। जब तक आप प्रकृति के दायरे में हैं

तक ईश्वर का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर सकते। गुरु महाराज ने कहा जब तक आप ईश्वर क्या है उसको प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कर लें तब तक ईश्वर कैसा है वह अनुमान या शास्त्रों का विषय ही रहेगा। विश्वास नहीं होगा उस पर। आपको प्रत्यक्ष अनुभव करने के लिये शरीर, मन, बुद्धि एवं अहम् के आगे जाना होगा क्योंकि यह शरीर, मन, बुद्धि एवं अहम् का इस प्रकृति के द्वारा निर्माण हुआ है लेकिन इसमें काम करने वाली शक्ति आत्मा है। जैसे आप देखते हैं कोई कारखाना चल रहा है। बहुत सी मशीनें लगी हुई हैं। मशीनें लोहे की बनी हैं। मशीनें बन्द हैं कोई काम नहीं हो रहा। हमने स्विच ऑन कर दिया अब सारी मशीनें काम करने लगीं। हर मशीन जो भी उसका काम है कर रही है। मशीन लोहे की बनी थी लेकिन बिजली का स्विच ऑन करने से सभी अपना-अपना काम करने लगीं। पर हमें नहीं मालूम बिजली क्या कर रही है। देखते हैं लोहे की मशीन काम कर रही है। स्विच ऑफ कर दें सभी मशीनें बन्द। ऐसे ही हमारे इस शरीर रूपी ढाँचा जिसमें मन बुद्धि और अहम् है उसमें प्रकृति भरा हुआ है। प्रकृति काम करा रही है आत्मा की शक्ति से। प्रकृति में अज्ञान है, जड़ता है। आत्मा में ज्ञान है। प्रकृति में रहकर जो कुछ देख रहा हूँ सुन रहा हूँ, अनुभव कर रहा हूँ। वह वास्तविक ज्ञान नहीं है। **देखिय सुनिय गुनअ मन माहीं। मोह मूल परमारथु नाहीं।** इस प्रकृति के आगे चलेंगे तो प्रकृति नीचे रह जायेगी आत्मा में प्रवेश कर जायेंगे। प्रत्यक्ष ज्ञान होगा। जैसे कारखाने में जाना था कि बिजली के बटन से ही कलपुर्जे चल रहे थे वैसे ही हम आत्मा की शक्ति से काम कर रहे हैं। लेकिन जायें कैसे? रास्ता नहीं मालूम। मन बुद्धि अहम् के आगे कैसे जायें? एक बच्चे को गंगा में स्नान करना था। मार्ग नहीं मालूम था। जाये कैसे। माँ की गोद हो लेता है। माँ उसे उसके गन्तव्य स्थान में ले जाती है। बच्चे को न कार में बैठना पड़ा, न ट्रेन में बैठना पड़ा, न गंगा के घाटों की सीढ़ियाँ चढ़नी पड़ीं। माँ की गोद में नदी किनारे पहुँच गया और सहजता से गोद में ही गंगा स्नान कर लेता है। ऐसे ही गुरु महाराज ने कहा तुम्हें कुछ नहीं करना है। तुम केवल मेरी गोद में आ जाओ। अपने को सौंप दो मुझे। सौंपना आसान नहीं। छोटा बच्चा माँ की गोद में चला जायेगा। लेकिन बड़ा नहीं जायेगा। उन्होंने कहा ठीक तुम नहीं आ सकते तो मैं करूँगा। तुम केवल मेरे सामने बैठ जाओ। तुम्हारा मन लगे या न लगे केवल बैठ जाओ। मैं तुम्हारे मन में, तुम्हारी बुद्धि में, तुम्हारे अहम् में प्रवेश करूँगा। न तुम में श्रद्धा है, न भक्ति है, न विश्वास है। तुम्हारे मन में प्रवेश करके उसको साफ करूँगा। श्रद्धा पैदा होगी। फिर बुद्धि में प्रवेश करके उसको निर्मल करूँगा तब तुमको विश्वास होगा वास्तव में यही ईश्वर हैं। तब मैं तुम्हें अपने से जोड़ लूंगा। तुम्हारा मन, बुद्धि और अहम् गुरुमय हो जायेगा जब सब गुरुमय हो जायेगा प्रकृति से हट जायेगा तो आत्मा में सापेक्ष हो जाऊँगा। तब सत्य को प्रत्यक्ष अनुभव करूँगा, देखूँगा कि संसार है क्या? सत्य क्या है? मैं क्या हूँ? खुद में, औरों में आत्मा ही देखूँगा। तब सबका भला सोचूँगा, प्रेम का व्यवहार करूँगा, सबके लिये सम्मान होगा। प्रेम से रहूँगा जीवन सुन्दर हो जायेगा। जीवन का श्रेयस प्राप्त हो जायेगा।

••

प्रवचन पराग–

पवित्रता

– परम भागवत परमसंत पं० मिहीलाल जी

पवित्रता एक ईश्वरीय गुण है। फिर सबसे पवित्र ईश्वर है जो इसका नाम लेते हैं, वह भी पवित्र हो जाते हैं। जो एक बार भी अन्तर से भगवान का नाम लेता है, 'राम' कह देता है, 'ओउम्' कह देता है, 'अल्लाह', 'रहीम' कह देता है, उसके शरीर के, मन के सारे पाप, ताप ग्लानि नष्ट हो जाती हैं, उसका शरीर कान्तिवान हो जाता है, वाणी में मिठास आ जाती है, शरीर पर ओज आ जाता है। परन्तु हमने उस भेद को अभी समझा नहीं। ऐसा प्रभु का नाम जिह्वा से कभी-कभी निकल पाता है, इसलिए भक्त लोग हर क्षण उसका नाम लेते रहते हैं। एक बार नाम लेने से कितने पाप नष्ट हो जाते हैं, कितने दु:खों से छूट जाता है, यह सब द्रोपदी, गजराज, प्रहलाद और अजामिल आदि की गाथाओं को सुनने से प्रतीत होता है। फिर यह बात नहीं कि उस नाम में आज इतना प्रभाव न हो, आज उससे भी अधिक प्रभाव है। तुम अकेले शरीर ही नहीं हो कि केवल जल से स्नान करके पवित्र हो जाओ। यह पवित्रता महात्माओं ने चार प्रकार की मानी है। शरीर के बाद प्रथम पवित्रता मन की है।

१-मन की पवित्रता—मन की पवित्रता में मन के मैल नष्ट हो जाते हैं। मन फिर मलिन बातों को पसन्द नहीं करता। झूठ, कड़ुवा बोलना, निन्दा करना, हिंसा, कुदृष्टि, अशुद्ध आहार, कपट, मिथ्याचार आदि छूट जाते हैं। जब उसके जीवन में संयम की अवस्था आ जाती है तो इन कामों से स्वयं बचता रहता है। कड़वी वाणी जैसे उसे सुनने में बुरी लगती है ऐसे ही बोलने में भी उसे पसन्द नहीं आती। एक सन्त को मैंने देखा कि एक सभा में वह बहुत अच्छा बोल रहे थे। एक दूसरे आदमी ने एकदम उनसे कुछ कड़वे, अनुचित और असहनीय शब्द कह दिये। यह सुनकर वह कुछ चुप हो गये। परन्तु उनका एक शिष्य खड़ा हो गया, और कुछ कहने को ही था तो वह बोले—भाई तुम हम दोनों के बीच में क्यों बोलते हो? हो सकता है मैंने कुछ अनुचित कह दिया हो, यह मुझसे बड़े हैं, इसलिए मुझे समझाया हो, दूसरे शायद यह मेरी परीक्षा ही ले रहे हों, तीसरे सम्भव है कि इनका ऐसा स्वभाव ही हो, कि कोई ठीक कहता हो परन्तु बिना बोले न मानते हों। फिर चौथी बात यह है कि मनुष्य की अपनी जिह्वा है, उसे अधिकार है उससे कुछ भी कहे, कुछ भी खाय परन्तु दूसरे समझदार को तो ऐसा नहीं करना है। यह मन की पवित्रता है।

२-इन्द्रियों की पवित्रता—जो मन से पवित्र रहते हैं वह अपनी इन्द्रियों को भी पवित्र रखते हैं। आँख एक बार कोई गलत दृश्य देखे, दूसरी बार फिर उधर को न देखे। कानों में कोई

अशुद्ध या मैलेपन की बात आवे, तुरन्त हटा दे, इसी प्रकार अपनी इन्द्रियों को अनुचित और अश्लील व्यवहार से बचाये रक्खे और शुद्ध विचारों की ओर लगाने का प्रयत्न करता रहे।

३-हृदय की पवित्रता—हृदय को मलिन स्वभावों से बचाये रखना। तुम मन को हृदय न समझो जैसे मन इन्द्रियों का राजा है। इनके शुद्ध रखने से मन, बुद्धि, अहं आदि सभी पवित्र रहते हैं। जिनका हृदय पवित्र होता है, वह स्थान भगवान के निवास के योग्य बन जाता है। इसलिए ऐसे हृदय में द्वेष, घृणा, ईर्ष्या, पाखण्ड, तृष्णा, शत्रुता, परायापन, निर्दयता और छूआछूत निकल जाता है, शुद्ध सुख प्रकट होता है, नम्रता, त्याग, प्रेम, धैर्य, भगवदाश्रय, जीव मात्र की सेवा, दया का संचार होने लगता है।

४-जीव की पवित्रता—जिसके चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियाँ ईश्वर की ओर लग गई हों। संसार की सारी वृत्तियाँ नष्ट हो गईं या शान्त हो गई हों। अन्तर मल, विक्षेपादि से शून्य हो गया हो, प्रभु की याद में ही सारा समय जाता हो, संसार का कार्य एक चतुर नौकर (सेवक) की भाँति करता हो। सिवाय गुरु या ईश्वर के कोई मालिक न रह गया हो। काम में दक्ष हो, आलस्य या प्रमाद पास न रहे। सारा समय उसका ईश्वर की पूजा अर्थात् संसार की सेवा में ही व्यतीत होता हो। जो अनात्मवस्तुयें हैं उनका ज्ञान हो, मन पूर्ण पवित्र हो, अपने को मालिक न समझे, यह जीव की पवित्रता है।

यह चारों प्रकार की पवित्रता अपने लिए बहुत आवश्यक हैं। ऐसा न हो कि केवल शरीर की पवित्रता में लग जाय, और पवित्रताओं का ख्याल ही भूल जाय। इसके लिए महापुरुषों ने कुछ युक्तियाँ लिखी हैं। उन्होंने लिखा कि शारीरिक पवित्रता के लिए स्नान आदि उत्तम है, अवश्य करो, परन्तु ऐसे न हो जाओ कि उसी का ख्याल रहे, किसी को छूने से घृणा हो, अपने वस्त्रों और पात्रों को ही धोता रहे। वह नहीं जानता कि शरीर की पवित्रता से मन की पवित्रता और भी आवश्यक है। शरीर पवित्र है, वस्त्र पवित्र है, चौका पवित्र है, पीने को गंगाजल है परन्तु भोजन हिंसायुक्त है, मलिन है, मन कैसे पवित्र रहेगा? तुम लगातार तीन दिन शुद्ध और पवित्र भोजन करो, चौथे दिन तुम स्वयं ही भोजन की पवित्रता जान जाओगे और स्वयं ही अपवित्र भोजन न कर सकोगे। फिर जो भी आवश्यक कार्य है, अवश्य करो, जैसे शरीर और सम्बन्धियों के निर्वाह करने को शुद्ध जीविका का उपार्जन, उसके लिए परिश्रम, अपने उचित नियमों का पालन, अच्छी संगति में बैठना, सत्संग या पूजा पाठ का नित्य नियम, परिवार में बैठना, मिलकर बात करना, सबके सुख-दुःख में सम्मिलित होना, यह पवित्र रहने की युक्ति है।

बहुत दिखावा न करें। गरीबों से, दुखियों से, अपाहिजों से ऐसे मिलो, मानो तुम उसके दुःख से दुःखी हो। तुम्हारे घर कोई सम्बन्धी या बाहर का मिलने आवे, जरूर पास बैठो, भोजन अपने हाथ या बच्चों से परोसवाओ, नौकर या किसी मलीन आदमी से नहीं। तुम्हारे लिए प्रेम से

कोई वस्तु लाया है बड़े प्रेम से ले लो, सराहना करो, उसका तिरस्कार न हो। जो बड़ा है उसका सत्कार करो। कम बोलने का अभ्यास करो। जिसको मिलने का समय दिया है, समय पर मिलो। यदि किसी को कुछ देना है तो चुपचाप उसे ही दे दो । लड़कियों और स्त्रियों से सम्पर्क कम रक्खो। उनसे बात करना ही है तो नीची निगाह रखकर करो। विद्वानों और सन्यासियों या साधुओं को सम्मान दो।

मुझे श्री महात्मा जी महाराज के पत्र देखने को मिले । वह अपने शिष्य पं० रेवती रामजी को पंडितजी पालागन करके लिखते थे। एक बार पण्डितजी ने कहा भी कि महाराज ये अनुचित है। कहने लगे—तुम ब्राह्मण हो, क्या हर्ज है। महात्मा कबीर ने भी एक जगह लिखा है—"**गुरु नवै जो शिष्य को, ताको कहिए सन्त**", निरभिमानी रहना सन्त का प्रथम लक्षण है।

एक मुसलमान फकीर बहुत उच्च श्रेणी के महात्मा थे। एक हिन्दू युवक भी उनके शिष्य हो गये थे। उनका करीब-करीब ग्यारह साल साथ रहा, लेकिन उन्होंने कभी अपना जूठा लोटा तक नहीं उठवाया, अपने यहाँ खाने को कभी आग्रह नहीं किया। एक बार शिष्य ने कहा भी, हुजूर यह अलहदगी कैसी? आपने कहा—तुम मेरे पास अध्यात्मज्ञान लेने को आये हो, तुम मेरे बच्चों के समान हो, परन्तु मैं नहीं चाहता कि तुम्हारे जो रीति-रिवाज हैं, जो तुम्हारा मज़हब है उसके खिलाफ कुछ करूँ। तुम ने इतना ही क्या कम किया है कि तुम मेरे यहाँ आ गये हो, और तुमने अपना दिल मुझको सौंप दिया है। मेरा भी फर्ज है कि तुमको यह विद्या दूँ और तुम्हें इस लायक करूँ कि तुम भी इस विद्या का अपने लोगों में प्रचार कर सको क्योंकि यह इल्म उधर से इधर आया है।

देखा, कितने उदारचित्त महात्मा थे, शिष्य अपने को उन्हें सौंप चुका था, अगर वह जरा भी इशारा देते, तो जरूर ही इस्लाम कबूल कर लेते। परन्तु कभी ऐसी बात जुबान पर लाना तो क्या, ख्याल भी नहीं किया। उदारता और सच्चाई की सीमा ही थे। कुछ लोग ऐसे होते हैं जो लोगों को मजहबों की शिक्षा देते हैं, लोगों को अलग-अलग कर देते हैं, अनेक सम्प्रदाओं और विभागों में बाँटते हैं, परन्तु सच्चे सन्त वह हैं जो बिखरे हुए लोगों को एक करने की कोशिश करते हैं। इसलिये सच्ची पवित्रता वही है जो हमारे अनेक और अपवित्र विचारों को हमसे अलग कर दे और हमें एक सच्चे मार्ग पर लगा दे। यह अपवित्रता (मलिन विचार) हमारे अन्तर में इतनी बस गयी है तुम किसी प्रकार अन्दर से निकाल भी न सकोगे। जैसे कोई काँटा तुम्हारे पैर में जब भीतर चला जाता है तो उसे कितनी भी कोशिश करो स्वयं नहीं निकाल सकोगे। दूसरा ही कोई थोड़ी बेरहमी (दया) करके निकाल देगा। ऐसे ही यह हमारी मलिनता भी संत ही जरा कड़े पड़कर निकाल देते हैं। इसीलिए परम पवित्रता के लिए किसी संत की ही शरण जाओ वही हमें पूर्ण पवित्र बना सकेंगे।

••

सुधा-सार :-

कुछ करना है

—नवनीत हृदय परम संत डा० बृजेन्द्र कुमार जी

(4 सितम्बर प० पूज्य बड़े भैय्या का अवतरण पर्व, पढ़ें उनका प्रेमभरा सन्देश उन्हीं के शब्दों में। बस ध्येय एक—कुछ चाह नहीं—सम्पादक)

पूज्य महात्मा गांधी का असहयोग आन्दोलन हममें से बहुतों ने देखा था और बाकी सबने उसके बारे में पढ़ा या सुना जरूर होगा। उस आन्दोलन में देशवासी सामूहिक रूप से कूद पड़े। सबका एक ही ध्येय था—अपने देश की आजादी। यही चाह थी कि किसी तरह देश आजाद हो। इस ध्येय को प्राप्त करने की एक तीव्र लालसा थी सबके अन्दर। आन्दोलन-कारियों ने पढ़ाई छोड़ी, नौकरी छोड़ी, परिवार को मुसीबत में डाला, खुद यातनायें सहीं, लेकिन जो कार्य हाथ में लिया था, उसको नहीं छोड़ा। इसके साथ-साथ सबकी पूज्य बापू में थी असीम श्रद्धा एवं उनके मार्ग में पूर्ण विश्वास। किसी एक ध्येय को लेकर अगर सामूहिक रूप से प्रयास किया जाता है तो उसका एक विशेष प्रभाव पड़ता है। इतनी दूर इंगलैण्ड में बैठे बादशाह का सिंहासन हिल गया और उनको हमें गुलामी के बन्धन से मुक्त करना पड़ा।

आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाले साधकों को ईश्वर प्राप्ति या आवागमन के चक्कर से मुक्त होने के लिए भी कुछ ऐसा ही करना पड़ता है।

साधक का एक ही ध्येय हो यानी ईश्वर की प्राप्ति। इसके अलावा कोई और कामना नहीं। जब और सांसारिक कामनायें जैसे पुत्र की प्राप्ति, नौकरी, इम्तहान में पास होना आदि साथ लगी रहती हैं तभी गड़बड़ी हो जाती है, असली ध्येय पीछे रह जाता है। गुरुजनों का तो कहना है कि भगवान की आराधना निष्काम भाव से करनी चाहिए। अगर यह नहीं कर सकते तो सिर्फ एक कामना रक्खो यानि ईश्वर की प्राप्ति। इसके लिए पूरी लगन से प्रयास करो। सांसारिक परेशानियों व कष्ट तुमको विचलित न कर सकें। तीसरी बात है कि गुरु में असीम श्रद्धा तथा उनकी बताई हुई साधना में पूर्ण विश्वास।

जब ऐसे साधक सामूहिक रूप से एक साथ एक स्थान पर बैठकर एक ही ध्येय को लेकर लगन से, भाव से, और पूर्ण विश्वास से साधना करते हैं तो गुरु से या भगवान से रहा नहीं जाता, वह भी ज्यादातर निराकार रूप से वहीं आ जाते हैं और अमृत वर्षा करने लगते हैं। कबीर साहब ने इसी तरह का अपने दोहे में इशारा किया है—

मेरा मन पंछी भया, उड़कर चला अकास।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा, साहिब सन्तन पास॥

आज इस समय भी ऐसी ही पावन घड़ियाँ हैं जब शान्त वातावरण एवं आनन्द की अनुभूति होने लगती है। यह श्री गुरु महाराज की ही देन है। ऐसे अवसर उपस्थित होने पर थोड़ी देर प्रेम भाव से विह्वल होकर प्रार्थना करनी चाहिए और कोई भी पदार्थ प्रसादरूप में प्रस्तुत करना चाहिए और यह भाव लाना चाहिए कि प्रभु इस संसार में सब कुछ आपका है हम आपको क्या दे सकते हैं, फि भी अपनी श्रद्धा के प्रतीक यह प्रसाद फल फू एवं अपने शुभकर्म आपको अर्पण कर रहे हैं चाहते यही हैं कि हमारे अन्दर कोई चाह न रहे जिस हालत में रखना चाहें रक्खें और आपव चरणों से हम विमुख न हों।

••

परमपूज्य बड़े भैया द्वारा बताये कुछ दिशा निर्देशामृत

जब तक सत्संग में सेवकों और तपस्वियों की परम्परा चलती रहेगी तब तक सत्संग रूपी ये गंगा की धारा अनवरत बहती रहेगी और असंख्य लोग शान्ति लाभ करते रहेंगे।

× × ×

हमारे पास जो कुछ भी हो उसे सत्संग का समझें, अपने लिये निमित्त भर लें और दूसरों के सुख के लिये अपने कष्टों की परवाह न करें। हमारे तपस्वी, सरल शुद्ध और पवित्र जीवन से ही सब प्रसन्न होंगे और हमें उनका आशीर्वाद प्राप्त होगा।

× × ×

आजकल हिपोक्रेसी और व्योरोक्रेसी आध्यात्मिक जगत में भी घुस गई है। हिपोक्रेसी कहते हैं ढोंग, मिथ्याचार, मन में कुछ और, मुँह में कुछ और। ब्युरोक्रेसी कहते हैं अफसरशाही या अधिकारी तंत्र को। इन दोनों के कारण न अब अनुशासन है, न ईमानदारी है। ज्यादातर साधक हिपोक्रेसी के शिकार हैं। गुरु के पास आते हैं तो कहते हैं कि यह दास भी ईश्वर प्राप्ति की इच्छा लेकर आपकी शरण में आया है, पर मन वह गुरु या सत्संग को सांसारिक इच्छायें पूर्ण हो का साधन बनाना चाहता है। और समय-सम पर इन इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रार्थना भ करता है।

आचार्य, उपदेशक, शिक्षक व्योरोक्रेसी क अपनाते जा रहे हैं। इज़ाज़त मिलते ही वह अप को दूसरों से भिन्न व उच्च समझने लगते हैं। उ साहब जी महाराज (राधास्वामी) का यह वच याद रखना चाहिये–

"यह मुसकराने का समय नहीं है, य सेवकाई का काम है, सेवक धर्म बहुत कठि होता है। अब तो तुम को रो-रोकर गुरु से प्रार्थन करनी चाहिए कि वह ऐसी कृपा करें कि तुम य जिम्मेदारी सही तौर से निभा सको।

× × ×

यह मत भूलो कि हम सब इस बाग के रखवाले हैं, माली हैं पर मालिक नहीं। अग हमारी नादानी से यह बाग उजड़ जाये तो सजा भी मिलेगी।

परमपूज्य मझले भैया के अवतरण दिवस पर उनके

वाक्यामृत - अब तो कुछ सुन लो

गुरु तुम्हारे दिल के भावों, तुम्हारे कर्मों को और व्यवहार को देखता है। अतः सत्संग से जुड़ने व सच्चा शिष्य बनने के लिये उनको सुधारने की जरूरत है। गुरु प्रेम प्राप्ति के लिये, श्रद्धा, विश्वास, सत्संग, सेवा और समर्पण करना परम आवश्यक है तभी आध्यात्मिक उन्नति सम्भव है।

× × ×

शिष्य हर पल ये ध्यान रखे कि इस सत्संग में मूलतः गुरु महाराज की शक्ति ही समाहित है और इसी से यह सत्संग अपार शक्ति सम्पन्न है। यह शक्ति केवल उसी समर्थ आदि शक्ति की है और जो शक्ति सत्संग से हम अर्जित कर रहे हैं वह भी उन्हीं की है। इसी शक्ति से जब शिष्य उस हर चीज से अपने को खाली कर लेता है, जो सतगुरु के प्रेम में रुकावट डालती है, तब सतगुरु अपने शिष्य के हृदय में प्रकट हो पाते हैं।

× × ×

शिष्य को हर समय ये अनुभव होते रहना चाहिये कि गुरु हमारे साथ हैं, सामने हैं। वह हमारी हर बात को देख रहे हैं। हमारे हर व्यवहार को देख रहे हैं। जब गुरु शरीर में नहीं रहते तब वह उस ईश्वरीय अव्यक्त दशा में रहते हैं और देखते सुनते व कृपा करते रहते हैं, जहाँ देश, काल और अवस्था की कोई रुकावट नहीं रहती। वह सदैव साथ रहते हैं। उनको दूर समझना अपने श्रद्धा और विश्वास को खो देना है और यही पतन की ओर ढकेल देता है।

× × ×

सच्चे शिष्य के लिये यह जरूरी है कि वह अपने को गुरु में लय कर ले, अपने अस्तित्व को गुरु के अस्तित्व में डुबो के एक हो जाये। ऐसा करते ही और गुरु से सुरति का दृढ़ सम्बन्ध जोड़ते ही उसकी पहुँच आदि पुरुष परमात्मा (समर्थ गुरु) से हो जायेगी और वहाँ से उसे दिव्य प्रकाश और दिव्य आनन्द की धारें बरसतीं महसूस होंगी और शिष्य शान्त व आनन्दमयी हो जायेगा। ●●

पंचामृत एक चीज

सब को देने के लिए कोई चीज है तो—प्रेम
पीने के लिए कोई चीज है तो—क्रोध
खाने के लिए कोई चीज है तो—ग़म
लेने के लिए कोई चीज है तो—ज्ञान
छोड़ने के लिए कोई चीज है तो—मोह

संचयन—अनंत और विवेक

निर्गुण ब्रह्म सगुण होइ आया

—डा० पी० डी० जो

7 सितम्बर युग पुरुष परमसंत श्री हेमेन्द्र कुमार जी (परमपूज्य मझले भैया) का अवतरण पर्व, उन्हीं के बारे में दो शब्द —स०

शास्त्रों में आता है कि वह परमात्मा निर्गुण है, निराकार है, निर्लेप है और इसी सत्ता में रहकर वह सृष्टि का संचालन करता है। लेकिन संसार में जीवों को दु:खी देखकर, उनकी कातर पुकार पर वह करुणा वरुणालय उनके कल्याण के लिए रूप भी धारण करता है। तब वह निर्गुण निराकार ब्रह्म सगुण साकार रूप में इस धराधाम में अपनी ही इच्छा से अवतीर्ण होता है। वह मानव शरीर धारण करता है इसलिए उसके सभी मानवीय व्यवहार श्रेष्ठतम् रूप में व्यवहृत् होते हैं। उसी सुन्दर व्यवहार द्वारा वह अपने को प्रकट भी करता है ताकि वह जिस प्रयोजन विशेष के लिए यहाँ आया है साधकगण उसे समझ सकें और लाभ उठा सकें। ऐसे ही एक सगुण साकार ब्रह्म का दर्शन हमने भी किया है प्रात: स्मरणीय परमसंत परमपूज्य हेमेन्द्र कुमार जी महाराज के रूप में। जिन्हें हम लोग अपने हृदय की भावना के अनुसार मझले भैया, चाचा जी, ताऊ जी, बाबू जी आदि पारिवारिक सम्बोधनों से सम्बोधित कर निकटता का अनुभव करते थे यद्यपि उनके लिए तो विश्व ही परिवार था ।

उस ईश्वर के बारे में महत्बुद्धि ऋषि-महर्षियों के द्वारा बहुत कुछ कह देने के बाद भी नेति-नेति ही कहा गया तो फिर अन्य कोई कितना कह सकता है। जो एक साथ ही सग साकार और निर्गुण निराकार भी हो उसके बारे कुछ कहना मुश्किल ही है। फिर भी भावातिरे में कभी लेखनी उनकी लीलाओं का आस्वाद करती हुई कागज पर कुछ उकेर देती है यद्य हृदय पटल पर चित्रित चित्र को सामने नहीं पाती।

आप पूर्ण पुरुष थे। इसलिए आपके प्रत्ये व्यवहार में पूर्णता थी, प्रेम की झलक थी। ए नये आये हुए अध्यापक साधक की बातें सुनने बाद आपने मात्र इतना कहा, "हमारा सत्संग ए परिवार है, गुरु महाराज ने परिवार का कांसे (concept) दिया है।" बस, साधक को समाध मिल गया। नये, पुराने, आज ही पदार्पण कर प्रत्येक साधक के प्रति आपकी आत्मीयता आदर दर्शनीय था। प्रथम बार मिलने आ रहे ए व्यक्ति का आपने उठकर अभिवादन किय वृद्धावस्था थी, थके हुए भी थे, तबियत भी ठी नहीं थी, घुटनों में दर्द भी था। फिर भी उ 'सबहिं मानप्रद आप अमानी'। इस सृष्टि अनवरत संचालन इसके प्रत्येक घटक अनुशासन में रहकर कार्य करने से ही हो रहा है इसे निराकार परमात्मा नियमित रखता

(शेष पृष्ठ 18 पर

आध्यात्मिक प्रेम में भय की महत्ता

—श्री अरुण राय

हाल ही में, मुंबई में एक सुबह के दौरान, एक भाई [जो बाहर से आये थे] ने कहा, संपूर्ण प्रेम में भय भी समाहित है —पूर्ण निर्भयता तो है ही।

मेरे मन में प्रश्न जगा, संत तुलसीदास जी ने यह तो कहा कि बिना भय के प्रेम नहीं हो सकता लेकिन यह क्यों कह रहे हैं कि प्रेम की अवस्था प्राप्त हो जाने के बाद निर्भयता के साथ ही साथ, भय भी रहता है—और रहना चाहिए भी।

उसी दिन शाम के सत्संग के समय मैंने उनसे पूछ ही लिया "भाई साहब! भय, प्रेम के लिए एक आवश्यक अवस्था तो होती है, ऐसा समझ में आता है; लेकिन भय प्रेम का परिणाम भी है, यह मेरी समझ में नहीं आया।

एक अजब सी प्रेम भरी मुस्कान उनके चेहरे पर फैल गयी, इस मुस्कान में प्रश्न की स्वीकृति थी, उत्साह का ओज था और बांटने का उल्लास भी।

इसके बाद जो भी मुझसे लिखा गया है, यह उनके उत्तर की मेरी हलकी सी समझ का परिणाम है।

उन्होंने कहा, भय भी तो कई प्रकार के होते हैं; भविष्य का भय—कहीं कुछ अवांछित न घट जाये, परिणाम का भय—कार्य या चेष्टा फलीभूत होगी या नहीं, या अन्य प्रकार के भय। यहाँ उन भयों की बात नहीं हो रही, यहाँ प्रेम जन्य भय की चर्चा हो रही है। प्रेम जन्य भय प्रेम के स्रोत को दुखी कर देने की सोच से, उसे अपने प्रति निराशा पैदा करने की आशंका से, या उसकी कसौटियों पर खरा न उतरने की संभावना से पैदा होता है, कहीं वे नाराज न हो जायँ— आदि, आदि।

अपनी माता से बच्चा पूर्णतया निर्भीक होता है, लेकिन यदि वह माँ के प्रति पूर्णतः समर्पित है, तो उसे यह भय तो रहता ही है कि मेरी किसी बात से, माँ नाराज न हो जाए, और यह भय निरंतर रहना भी चाहिए—यही भय उसे गलत कामों से रोकता है।

अध्यात्म के मार्ग में भी यह भय, सही पथ पर बने रहने में बहुत सहायक होता है। कितनी भी ऊँचाई पर पहुँचे, बड़े से बड़े संत ही क्यों न हों, आंतरिक मानसिक विचारों से, हममें से कोई भी, पूर्णतः मुक्त नहीं रह सकता, यह अस्वाभाविक और अवैज्ञानिक भी है, मन के अन्दर सत्, रज या तम् सभी गुण निरंतर कार्यशील रहते हैं, यह मन का नैसर्गिक संस्कार है। तब प्रश्न यह उठता है कि तामसिक प्रवृतियों के तात्कालिक या निरंतर आक्रमण से मन को कौन बचाए?

इसका सरल सा उत्तर है—गुरु और ईश्वर का भय, और वह भय भी इसीलिए कि हम उससे माता के समान प्रेम करते हैं, कहीं मेरी माँ मुझसे नाराज न हो जाये; कहीं मैं उसकी नज़रों में गिर न जाऊं, इसकी आशंका का भय, हमें मन में गलत विचारों के आने मात्र से भी बचाता है।

परम गुरु के सम्बन्ध में बहुत ही चर्चित प्रसंग है—किसी भाई ने उनसे पूछा, शराब मुझसे कैसे छूटे? सभी जानते हैं, परम गुरु ने क्या कहा

था—"बिलकुल मत छोड़ो शराब पीना, सिर्फ इतना करना कि पीने के समय यह सोच लेना कि मैं भी तुम्हारे साथ बैठा हूँ।

गुरु से अनन्य प्रेम था तभी तो साधक ने खुले मन से अपनी विकृति व्यक्त कर दी—बिना किसी छुपाव या दुराव के—ऐसी खुली अभिव्यक्ति आसान है क्या; संभव है क्या, बिना अगाध प्रेम के?

लेकिन तब, गुरु का भय उसे उस तामसिक मार्ग से रोक लेगा, ऐसा गुरु का भी विश्वास था।

हम सभी जानते हैं, पाप हो जाने के बा प्रायश्चित ही एकमात्र युक्ति है, मुक्ति की- कृष्ण से लेकर अतिसाधारण व्यक्ति—सभी क यह करना पड़ा है और करना पड़ेगा, प्रायश्चि का भय निरंतर मन में समाया हो तभी ही, कुमा पर चलने से हम निरंतर बचे रह सकते हैं।

गुरु और ईश्वर से प्रेम में असीम निर्भयत है तो न भटकने देने का निरंतर सहयोगी-भ भी।

●●

पेज 16 का शेष भाग

इसीलिए साकार परमात्मा को भी अनुशासन हीनता पसन्द न थी और उसे समयोचित ढंग से सामने रख देते थे। थोड़े से शब्दों में बहुत कुछ समझा देना, आत्मानुशासन द्वारा समझा देना, कभी उदासीनता, कभी प्रेम का भाव दिखाकर समझा देना, आवश्यकता समझी तो स्पष्ट शब्दों में कह देना आपकी खासियत थी। साथ बैठे या चल रहे साधक के मनोभावों पर बराबर ध्यान रखते थे। एक अवसर पर एक साधक हाथ के पंखे से हवा कर रहा था। एक आदरणीय बुजुर्ग कुछ गम्भीर बातें कह रहे थे। साधक ने बाद में महसूस किया कि जब तक उसका ध्यान उनकी ओर और पंखा करने की ओर था सब ठीक था। जैसे ही उसका ध्यान बातें सुनने की ओर गया, आपने तुरंत वहाँ से हटा दिया। कभी गलती पर आप कहते कुछ नहीं पर अन्तर में एहसास हो जाता। फिर पास जाने में डर भी लगता, पर दूर भी नहीं जा पाते थे। ऐसी अद्‌भुत आपकी कृपा और प्रेम था। वाणी की मधुरता से लगता है भगवान श्री कृष्ण चन्द्र की बांसुरी आपकी जिह्वा पर निवास करती थी, आपके स्नेह और वात्सल की याद कभी-कभी हृदय को आलोड़ित क देती है। लगता है आपने परिश्रम और कष्ट उठाया पर हमने उसे व्यर्थ कर दिया। आप समझाया परंतु हम न समझ सके, और कुछ जैसा-तैसा समझ भी लिया तो उस पर चल ह नहीं पाते हैं। निर्बलता, प्रमाद आदि घेरे ही रहत हैं। परन्तु एक बात है कुछ आपके प्रेमपूर्ण मधु शब्द जो कानों में गूंजते हैं और कुछ मधु चितवन जो हृदयांकित है हिम्मत देती है, भरोस दिलाती है। हम साधारण में भी साधारण जीव, न हृदय की पवित्रता, न कोमलता, न गहरी श्रद्धा न सजगता ही, कैसे आपकी ओर चलें-बढ़ें लेकिन—

हम दीनों का कौन प्रभु! जिस ओर नजर कर देख सकें
कुछ ऐसा बल नहीं, जिसे हम अपना संबल समझ सकें।
हाँ! निर्बल के बलराम सुना है, दीनबन्धु भी कहते हैं
इसी भरोसे द्वार आपके, हम भी आते रहते हैं।

आप हम सब पर सदैव अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखें।

●●

दुखःसंयोगवियोगं योगसंज्ञिताम्

—श्री गोपाल कृष्ण रंजन

योग का अर्थ मिलाप या जोड़ है। दो सजातीय तत्वों का आपस में मिलना योग कहलाता है। महर्षि पतंजलि के द्वारा परिभाषित योग से तो हम और आप भली भांति परिचित हैं, जहाँ वह चित्त की वृत्तियों के विरोध को योग कहते हैं। इस तरह योग शब्द के कई अर्थ प्रचलित हैं। परन्तु श्रीमद्भगवद्गीता में जिस योग का भगवान कृष्ण ने प्रतिपादन किया वह अदभुत और विलक्षण है। इस परिभाषा में योग ज्ञान (सिद्धांत) के क्षेत्र से निकलकर विज्ञान (अनुभव) के क्षेत्र में प्रवेश करता है।

प्रमुख तौर पर गीता में योग के लिए जो परिभाषाएं आई हैं वे हैं—

(1) समत्वं योगं उच्यते : परमात्मा से नित्य संबंध और अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में समता भाव रखना योग कहलाता है। (2/48)

(2) योगः कर्मसु कौशलम् (2/50) : (यथार्थ) कर्म में कौशलता योग है।

(3) यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।
यत्र चैवात्मनात्मानं पश्यन्नात्मनि तुष्यति॥
(6/20)

(योग के अभ्यास से चित्त की निरोधावस्था प्राप्त होती है और इस स्थिति में मनुष्य शुद्ध मन से अपने को देखता है और अपने आप में ही आनन्द प्राप्त करता है।)

इनके अतिरिक्त भगवान योग की एक और परिभाषा बताते हैं—

तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
(6/23)

अर्थात् दुःखों के साथ जो संयोग है उससे वियोग होने का नाम योग है। यह परिभाषा विलक्षण है, इसे समझने के लिए पहले हमें दुःख क्या है? उससे संयोग क्या है? और कैसे है? तथा उससे वियोग का क्या अर्थ है ये जानना होगा।

दुःख का तात्पर्य है असत् के संग से उत्पन्न द्वंद जैसे राग-द्वेष, अनुकूलता-प्रतिकूलता, अच्छा-बुरा आदि। असत् क्या है? असत उसे कहते हैं जो सदा, नित्य न रहे, जो हर क्षण परिवर्तनशील हो और जिसकी स्वयं की स्वतंत्र सत्ता न हो। इसके विपरीत सत्य यानि जो सदा रहे, जो नित्य रहे। जो निर्विकार है, जो सदा अपरिवर्तनशील हो, और जिसकी स्वयं की स्वतन्त्र सत्ता है। इस दृष्टि से केवल परमात्मा ही है जो नित्य, अपरिवर्तनशील है, जो विकार-रहित है वही एकमात्र सत् है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।
उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वन्योस्तत्वदर्शिभिः॥
(2/16)

(असत का अस्तित्व नहीं है और न ही सत का कभी अभाव होता है, इन दोनों की

वास्तविकता तत्वदर्शी जानते हैं।)

भगवान कहते हैं कि हमने अपनी अज्ञानता वश जो असत के साथ संग कर लिया है, यही सारी समस्या की जड़ है। इस अज्ञानता के कारण हम अपने सत्वस्वरूप को भूलकर असत शरीर, जगत आदि को ही अपना रूप मान बैठे हैं। इस देहात्मबुद्धि के कारण हम विकारी, मर्त्य और क्षुद्र बन गए, जगत और शरीर के विषयों को सत्य, सुखकारक और मूल्यवान समझकर उसमें आसक्त हो गए। जब तक इस भ्रम का निवारण नहीं होगा दुःखों से छुटकारा असंभव है। असत का असंग और संबंध - विच्छेद होते ही हमें योग की प्राप्ति हो जाती है। महर्षि पतंजलि कहते हैं अविद्या (नित्य-अनित्य का भ्रम), अस्मिता (अहंकार), राग (attachment), द्वेष (aversion) और अभिनिवेश (न होने का भय)—ये सब योग में अवरोधक हैं।

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः॥

(प.यो.सू. 2.3)

शास्त्रों में ब्रह्म का लक्षण सत, चित और आनंद और उसकी शक्ति प्रकृति बताई गई है। इस प्रकृति के तीन गुण हैं—सत्व, रजस और तमस, जब प्रकृति ब्रह्म में अव्यक्त रूप में रहती है, ये तीनों गुण पृथक-पृथक अपने रूप में साम्यावस्था में रहते हैं, इन तीनों के विभिन्न अनुपातों में मिलने से ही सृष्टि और उसके नानात्व का निर्माण होता है। सीमाएं और अल्पता भी इन्हीं गुणों के ही कारण हैं। सत में ज्ञान और सुख, रजस में तृष्णा, कर्म और दुख तथा तमस में आलस्य, प्रमाद और अज्ञान की क्रमशः प्रचुरता रहती है। प्रकृति के दो रूप हैं—एक तो शुद्ध सत्वमयी और दूसरी मिश्रित त्रिगुणमयी। शुद्ध सत गुण वाली प्रकृति माया कहलाती है, इसमें रजस और तमस का कोई मेल नहीं है। जब ये दोनों सत से मिल जाते हैं तो सत गुण मलिन हो जाता है, इस प्रकृति को अविद्या कहते हैं। शुद्ध सतगुण ब्रह्म के सत चित आनन्द के लक्षण को आवृत नहीं करता, इस शुद्ध सत् गुण में प्रतिबिम्बित होकर ब्रह्म ईश्वर कहलाता है, जिस माया के संयोग से ब्रह्म ईश्वर बनता है वह माया ईश्वर के ही अधीन रहती है। तमस से आवरण और रजस से विक्षेप होता है, इनके कारण सर्वत्र व्याप्त ब्रह्म आवृत हो जाता है और उसका बोध हमें नहीं हो पाता, यही अविद्या है। त्रिगुणात्मक अविद्या में प्रतिबिम्बित ब्रह्म जीव की संज्ञा पाता है, ईश्वर और जीव में बस यही भेद है, इस अविद्या के हटते ही यह भेद मिट जाता है।

भगवान कहते हैं—

सुखमात्यन्तिकं यत्तद्बुद्धिग्राह्यमतीन्द्रियम् ।
वेत्ति यत्र न चैवायं स्थितश्चलति तत्त्वतः॥
यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः।
यस्मिन्स्थितो न दुःखेन गुरुणापि विचाल्यते॥

(6/21-22)

(इस अनंत सुख को वह शुद्ध बुद्धि द्वारा प्राप्त करता है। यह सुख इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नहीं है, इस स्थिति को प्राप्त कर मनुष्य फिर कभी सत्य से विपथ नहीं होता, इस सुख को प्राप्त करने के बाद वह और किसी भी लाभ को इससे बढ़कर नहीं मानता। ऐसी स्थिति को प्राप्त कर

मनुष्य बड़ी से बड़ी कठिनाई और दु:ख में भी विचलित नहीं होता।)

शुद्धबुद्धि क्या है? हमारी बुद्धि प्रकृति की अन्य वस्तुओं की तरह तीन गुणों से बनी है, शुद्धबुद्धि का अभिप्राय है बुद्धि का रजोगुण और तमोगुण से शुद्ध होना। श्रवण, मनन और निदिध्यासन के तीन चरण इस बुद्धि के मार्जन और शोधन के सबसे श्रेष्ठ उपाय हैं। श्रवण का सामान्य अर्थ है अपने गुरु से परमार्थ तत्व के विषय में सुनना। इससे हमें ज्ञान होता है कि हमारी पूर्व की धारणाएं मिथ्या थीं और इन्हें त्याग कर इनके स्थान पर नई धारणाओं को स्थान देना चाहिए। सुने हुए उपदेश पर पुनः-पुनः विचार करना मनन कहलाता है, इसमें अपनी पूर्व की मिथ्या अवधारणाओं का हृदय से निकाल कर श्रवण द्वारा प्राप्त सत्य ज्ञान को स्थापित किया जाता है इस तरह यथार्थ ज्ञान संशयरहित बनकर हृदय में दृढ़ हो जाता है । अब अपना सत्वस्वरूप अनुभव में आने लगता है, यही वृति जब निरंतर बनी रहे तो इसे वृत्ति की एकतानता कहते हैं। यही निदिध्यासन है। महर्षि पतंजलि कहते हैं—**तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम**—उस आत्मा में प्रत्यय अथवा वृति की एकतानता ही ध्यान है, यह ध्यान जब परिपक्व हो जाता है तो समाधि में परिणत हो जाता है।

ध्यान की अवस्था में ध्याता (जो ध्यान कर रहा है), ध्यान (ध्यान की प्रक्रिया) और ध्येय (जिसका ध्यान किया जा रहा है) तीनों का भान रहता है। ध्याता और कुछ नहीं मानसिक वृतियां ही हैं, इनकी वजह से शरीर-मन-बुद्धि आदि का अनुभव होता है। ध्यान के अभ्यास की वृद्धि के साथ ये वृतियां शान्त होती जाती हैं और उसके साथ ध्याता का भाव मिट जाता है, ध्याता के मिटते ही ध्यान की क्रिया का भी लोप हो जाता है। इसके लोप होते ही केवल ध्येय ही रह जाता है और हमें ध्येय रूप में सिर्फ आत्मा का ही भान होता है। इस समाधि की अवस्था में एक ही ब्रह्माकार वृति रह जाती है और हमें आत्म-स्वरूप ब्रह्म का अनुभव होता है। भगवान कहते हैं—यथा **दीपो निर्वातस्थो नेंगते सोपमा स्मृता**—यह वृति बिना वायु वाले स्थान में दीप की लौ के समान स्थिर होती है, वायु के झोकों से सुरक्षित दीप की लौ ऊर्ध्वागामी और स्थिर हो जाती है ठीक उसी प्रकार विषयों में संलग्न रहने वाला मन जब ध्यान के समय शान्त हो जाता है। तब वह स्थिर और एक ही अखण्ड ब्रह्मकार की वृति को धारण कर लेता है, अविद्या का प्रतिबंध हट जाता है और आत्मा को अपने सत्वरूप का सहज बोध अपने से ही होता है।

सार रूप से कहें तो गीता का योग यही है—असत से संबंध विच्छेद और सत से नित्य संबंध। इस योग की प्राप्ति के लिए गीता ने विभिन्न साधनों जैसे कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग आदि का वर्णन किया है, इन साधनों का मुख्य उद्देश्य बुद्धि और हृदय का मार्जन और शोधन करना है। यह होते ही योग तो सहज प्राप्य है।

भगवान ने प्रमुखत: दो निष्ठाएं बताई हैं—कर्मयोग और सांख्ययोग, (३/३) कर्मयोग से असत की असंगता और सांख्ययोग से सत की

(शेष पृष्ठ 26 पर)

योग विज्ञान का ध्येय आत्म दर्शन

—श्री शिव प्रसाद शर्मा

परमाराध्य पंडित जी महाराज के अपने समर्थ सद्गुरु भगवान के प्रति व्यक्त किये गये उद्गार में ही योग विज्ञान का सम्पूर्ण सारांश समाहित हो गया है–

"मेरे गुरु (परम संत श्री डा० चतुर्भुज सहाय जी) पूर्ण पुरुष थे, सदाचार की एक सीमा थे, सम्पूर्ण विद्याओं के धनी थे, संसार और परमार्थ दोनों ही में वह महान थे। गृहस्थों ने उन्हें पक्का गृहस्थ देखा और विरक्तों ने उन्हें पूर्ण विरक्त पाया। वह ईश्वर स्वरूप थे।"

आज उन्हीं महाप्रभु की प्रेरणा का मूर्त स्वरूप योग विज्ञान विशेषांक हम सबके आत्मकल्याणार्थ प्रस्तुत होने जा रहा है। यह हम सबको आत्मदर्शन की बलवती लालसा प्रदान कर गुरु भक्ति के कृपा प्रसाद की अनुभूति कराये यही निवेदन है।

अपने ही महापुरुषों के अनुभव के माध्यम से यह ज्ञात होने लगा कि इस सृष्टि का अधिष्ठाता परमात्मा तो इस सृष्टि से भी परे तक है। उसकी एक नन्हीं सी सामर्थ्य ने यह विशाल दृश्यमान जगत ही प्रगट कर दिया।

उसने अपने आप अकेले को तीन मुख्य विधाओं में व्यक्त कर दिया है। निर्गुण निराकार ब्रह्म सत् चित् आनंद लक्षणों से परिपूर्ण हो; सगुण निराकार हो, परमात्मा के गुणों से गुणवान हो तथा सगुण साकार हो जगतगुरु भगवान के प्रत्यक्ष स्वरूप से करुणावतार बोधमय होकर लीला कर रहे हैं। हे परम प्रभो! व्यक्त और अव्यक्त दोनों आप ही हैं।

अनंत ऐश्वर्य अनुपम सौंदर्य तथा अगाध माधुर्य आपका रूप तथा उससे भी परे स्वरूप भी है।

आप ही के सम्यक दर्शन, सर्वाङ्ग मनोहारी स्वरूप के बोध के लिये दर्शन शास्त्र एवम् योग की विविध पद्धतियों का विशद वर्णन है।

सार्वभौम कहे जाने वाले योग दर्शन में जो भी वर्णन है वह मानव मात्र के सर्वांगीण विकास के लिये ही है।

अहिंसा परमोधर्मः, सत्यमेव जयते, शाँति तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की उद्दात भावनाओं के चरितार्थ होने पर ही सच्चे अर्थों में विश्व कल्याण संभव हो पायेगा। यही शांति देने वाला सत्य ज्ञान व्यावहारिक होकर सबके द्वारा आचरण में लाया जा सके यही योग विज्ञान है।

भारतीय दर्शन सफलता असफलता में सत्य ध्येय परमात्म तत्व बोध अर्थात् आत्म दर्शन को ही स्वीकारता है।

परम पूज्य पंडित जी महाराज का आश्वासन कि हमारे गुरु महाराज जी का यह आंतरिक सत्संग आपको दुखों से नहीं बल्कि

दुखों से दुखी होने से बचायेगा। आपको मृत्यु से नहीं अपितु मृत्यु के भय से बचायेगा साथ ही भय की स्थिति उपस्थित होने पर भी आप भयभीत न होकर निर्भीकता में शांत रहेंगे।

परम संत श्री कबीर साहब की वाणी है—

जब तू आया जगत में जग हंसा तू रोया।
ऐसी करनी कर चले तू हंसे जग रोये॥
जा मरने से जग डरै मोहि बड़ा आनंद।
कब मरिहौं कब पाइहौं पूरण परमानंद॥

जीव को ईश्वर के पद पर प्रतिष्ठित करने वाले समर्थ सद्‌गुरु भगवान का माहत्म्य तथा प्रभाव अनिर्वचनीय है। उन्हीं की स्तुति तथा वंदना में गाये गये अधोलिखित श्लोक सतत् चिंतनीय हैं। इससे योग विज्ञान मूर्त रूप होकर दीन दु:खियों के आँसू पोंछता है। सत् चित् आनंद मूर्ते गुरु को सतत नमन् है।

प्रेमाम्बुधिं प्रेम रसायनञ्च प्रेम
प्रदानं निधिम द्वितीयम्।
मृत्युञ्जयम् मृत्यु भयापहारम्;
श्री सत्यदेवं नितरां नमामि॥

इस योग विज्ञान के बोध के बिना मानव कभी अनुकूलता और प्रतिकूलता के द्वन्द की पीड़ा से मुक्त नहीं हो पायेगा; चित्त की विक्षुब्धता से बच नहीं पायेगा।

ऐसे ही श्वेताश्वतर उपनिषद में एक गूढ़ रहस्य का निरूपण करते हुये कहा गया है कि-

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिस्यन्ति मानवाः तदा दैवम विज्ञाय दुखस्यान्तो भविष्यति। श्वेत उप० /६/२०

अर्थात् जैसे सर्वत्र व्याप्त आकाश को चमड़े के सदृश लपेटा जाना संभव नहीं है। ठीक वैसे ही आत्मा परमात्मा के बोध के बिना दुखों का अंत संभव नहीं है।

परमात्मा की प्राप्ति अथवा निज स्वरूप का बोध ही मानव मात्र को प्रेम की पूर्णता, ज्ञान की पूर्णता तथा सदाचार की पूर्णता प्रदान करता है। गुरु महाराज की महती कृपा का ही फल है कि वह निरंतरता आज तक इस सत्संग सुरसरि में प्रवाह मान है।

आज भी अनुभव किया जा रहा है कि हमारे वर्तमान महापुरुष गृहस्थी और विरक्ति दोनों में संयम, समता और सम्यक् ज्ञान का सजीव आदर्श लेकर चल रहे हैं। आध्यात्मिक सुगंधि का यही आकर्षण उत्तरोत्तर जन जीवन को सुंदर दिशा निर्देश दे रहा है।

योग विज्ञान के भी मूल में जिज्ञासा, सत्संग, विवेक तथा स्वाध्याय नितान्त आवश्यक बतलाये गये हैं। इन्हीं के माध्यम से संसार का सबसे कठिन काम बिगड़े स्वभाव को सुंदर बनाना सार्थक किया जाता है। सदगुरु भगवान की कृपा से ही साधक की कठोर वाणी मधुर, बुरे विचार सुंदर तथा शुभ कर्मों में प्रवृत्ति हो जाती है।

आध्यात्मिक पौधों का विकास सहज हो जाता है। विवेक इसकी साज सम्हाल करने लगता है। इसीलिये योग विज्ञान के मूल में गुरु कृपा का अवलम्ब ही सर्वस्व है।

अंत में समर्थ सद्‌गुरु भगवान कृपा सिन्धु

की महती कृपा ही है कि उनकी यह साधना शैली आज देश विदेश में जन-जन तक पहुँच रही है। यह सबके लिये सरल, सुबोध तथा सर्वग्राह्य है।

जिस प्रकार निद्रा में जाने के लिये कोई चेष्टा या प्रयास काम नहीं देता है अपितु चाह ही सरलता से निद्रा माता की गोद में पहुँचा देती है। शरणागत होने का भी यही सुगम मार्ग है। सारी साधनायें अंत में सामर्थ्यवान प्रभु के शरणागत होने का ही उपदेश करती हैं।

मेरे समर्थ गुरु महाराज जी ने ईश्वर संबंधी सारी भ्रान्तियों का सरलतम् निराकरण कर दिया है–

"ईश्वर तो एक शक्ति (पावर) है, न उसका कोई नाम है न रूप। जिसने जो नाम रख लिया वही ठीक है।"

वही नाम रूप तथा दृश्य प्रपंच में अरूप होकर लीला कर रहे हैं। आपकी साधना का मूल है–

मनोनिग्रह, वासनाक्षय तथा परमात्म तत्व बोध। ●●

भिक्षुक गीत

–श्री रामेश्वर पाठक

कइसे होई हमर नइया पार हे गुरुजी
बइठल बानी रउरे दुआर हे गुरुजी॥

करम धरम नाहीं ज्ञान के मरम नाहीं
बिगरल बा सब व्यवहार हे गुरुजी॥

लोभ मोह घेरले बा मतिया के फेरले बा
फँसत मनवा माया के बाजार हे गुरुजी॥

जोग जप तप नाहीं मन बसे पाप माहीं
कइसे होखब रउआ हमार हे गुरुजी॥

भाई बन्धु कुल नार धन जन परिवार
सपना के सब संसार हे गुरुजी॥

पाठक अधम नाथ रउरे चरण माथ
दया माँगे आइल बा भिखार हे गुरुजी॥

✦✦

योग-विज्ञान

योग व मानव जीवन मूल्य

—श्रीमती आभा कुलश्रेष्ठ

योग एक विवेकपूर्ण प्राचीन व्यावहारिक विज्ञान है, जिसे जानने व सीखने के लिये दृढ़ संकल्प, अनुशासन व समर्पण की आवश्यकता है क्योंकि ये स्वयं एक अनुशासन है। योग शरीर व मन का संयम भी है जो स्वस्थ शरीर के लिये प्रथम सोपान है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र की भाँति अध्यात्म के क्षेत्र में भी इसका बहुत महत्व है क्योंकि बिना स्वस्थ शरीर के ईश्वरोपासना सम्भव ही नहीं है।

हमारे परमपूज्य गुरु महाराज द्वारा लिखित अनेक पुस्तकों में योग विज्ञान का वर्णन मिलता है। राजयोग, भक्ति योग, कर्मयोग व ज्ञानयोग के गूढ़ रहस्यों को सरल रूप देकर उन्होंने प्रार्थना पद्धति में समावेश किया है। योग के ये चारों प्रकार आपस में अलग न होकर एक दूसरे के पूरक हैं। जहाँ राजयोग का एक अंग आसन है वहाँ कर्मयोग में भी आसन को एक अंग माना जाता है। मुख्य ध्येय तो लाभ प्राप्ति का है।

राजयोग अतीन्द्रिय ज्ञान व परमसत्ता को जानने का सर्वोत्तम उपाय है। ये आठ सोपानों में विभक्त है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान व समाधि इसके अन्तर्गत आते हैं। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह यम के अन्तर्गत आते हैं तथा शौच, संतोष, तपस्या स्वाध्याय आदि नियम के अन्तर्गत। राजयोग का तृतीय सोपान है आसन अर्थात् स्थिर बैठना। इनकी भूमिका रोगों से मुक्ति दिलाने में भी महत्वपूर्ण है। चतुर्थ है प्रत्याहार मन को अन्तर्मुखी करना। पंचम है धारणा—मन की एकाग्रता को एक बिन्दु पर स्थिर करना। तत्पश्चात। है ध्यान—एकाग्रता की निरंतरता बनाये रखना, अंतिम है समाधि-अतीन्द्रिय ज्ञान की अवस्था व ईश्वरानुभूति। उपरोक्त सभी अवस्थाओं को प्राप्त कर लेने वाला व्यक्ति स्वयं ही उच्च अवस्था को प्राप्त कर जीवन सफल बना लेगा परन्तु इसके लिये संकल्प, अनुशासन व निरंतर अभ्यास अति आवश्यक है।

भक्तियोग के विषय में परम पूज्य गुरु महाराज ने 'अलौकिक भक्ति योग' नामक पुस्तक में विस्तार से विवेचन किया है। भक्ति योग की सम्पूर्ण व्याख्या कबीर के द्वारा समझाई गई है। कहा गया है कि भक्त को गुरु या इष्ट के सम्मुख ये सोचते हुये बैठना चाहिये ''मैं एक पवित्र आत्मा हूँ शरीर या पदार्थ नहीं हूँ।'' ताकि मन पवित्र रह सके। श्रवण, कीर्तन, स्मरण, सेवा, अर्चन-वन्दन, दास्य सौख्य व आत्म निवेदन आदि भक्ति योग की नौ विधियाँ हैं।

कीर्तन की विधि विशेष प्रभावी है। चैतन्य महाप्रभु ने इसका विशेष प्रचार-प्रसार किया था। अपार जन समूह द्वारा बिना थके कई घंटे तक कीर्तन-भजन किया जा सकता है। आपस में प्रेम सौहार्द तो बढ़ता ही है मन को असीम संतोष व सुख शान्ति भी मिलती है। आत्म निवेदन से भी मन की कुन्ठायें दूर होती हैं। मनोवैज्ञानिक रूप से देखें तो भक्ति योग द्वारा मन की पीड़ाओं, तनाव व अकेलेपन को दूर किया जा सकता है।

योगीराज कृष्ण को कर्मयोगी कहा जाता है। ज्ञान की गीता में उन्होंने कर्म का संदेश दिया है। कर्मयोग में मनुष्य को फल की चिन्ता किये बिना कर्म करते रहने का उपदेश है। कर्म में मनुष्य का शरीर ही नहीं इन्द्रियाँ व मन भी शामिल होते हैं। हठयोग, जपयोग, मुद्रायें व आसन आदि कर्मयोग के अन्तर्गत आते हैं। निष्काम कर्म जैसे गुरुद्वारों में की जाने वाली व सत्संग इत्यादि में की जाने वाली कार सेवा इसका प्रमुख उदाहरण हैं। यों तो मनुष्य व कर्म एक दूसरे के पूरक हैं कर्म किये बगैर मनुष्य रह ही नहीं सकता। मनुष्य अपने लिये ही नहीं समाज के लिये भी कार्य करता है।

योग ने प्राचीन काल से अब तक की लम्बी यात्रा में मानव जीवन का बहुत उपकार किया है। फर्क इतना है पहले केवल भारतीय लाभ उठाते थे अब विदेशी भी उठा रहे हैं। मनोविकारों को दूर करने के लिये भी अब योग का सहारा लिया जा रहा है। योग व आयुर्वेद एक दूसरे के पूरक हैं। आयुर्वेद मनोविकारों का कारण गलत चिन्तन को मानता है। चिन्ता, द्वेष, अहंकार, मत्सर, क्रोधादि अनेक रोगों को जन्म देने वाले उद्वेग हैं इनका शमन योग द्वारा सम्भव है। योग विज्ञान मानता है कि मन को शुद्ध रखना उतना ही आवश्यक है जितना तन को। मन की गहराइयों में आश्चर्य जनक शक्तियाँ छिपी हैं। कहा भी जाता है–'मन के हारे हार है मन के जीते जीत।'

✦✦

पेज 21 का शेष भाग

संगता हासिल होती है। इन दोनों के अलावा भगवान भक्तियोग का मार्ग भी सुझाते हैं, जहां कर्मयोग और सांख्ययोग साधक-साध्य है इसलिए कठिन और दुष्तर हैं वहीं भक्तियोग भगवद-कृपा-साध्य है, इसमें भक्त केवल अपने इष्ट के सम्मुख हो जाता है और अनन्य निष्काम भाव से अपना कुशलक्षेम उन्हीं के हवाले कर निश्चिन्त हो रहता है। रिजा (अनुकूलता और प्रतिकूलता में निर्पेक्षता) और तवक्कुल (पूर्ण समर्पण) उसकी साधना के दो आधार रहते हैं, उसे सांसारिक सिद्धि-असिद्धि से कोई लेना देना नहीं रहता। शनैः-शनैः उसमें समता स्वतः आ जाती है जहाँ अन्य शास्त्र योग के लिए अधिकारी अनधिकारी का भेद मानते हैं। गीता ने इसे अधिकार अनधिकार से परे रखा। उन्होंने पूरे मनुष्यमात्र को इस योग का अधिकारी माना। पापी से पापी मनुष्य भी इसको प्राप्त कर सकता है। दुराचारी से दुराचारी मनुष्य भी अनन्यभाव से भगवान का भजन कर सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी देश का, किसी वेश का, किसी वर्ण का, किसी सम्प्रदाय का, चाहे कैसा भी व्यक्ति हो वह असत के बंधन से मुक्त हो सकता है। ●●

योग विज्ञान द्वारा प्राण ऊर्जा की प्राप्ति

—श्री विमल केशरी

योग का अर्थ है—जोड़, यह अध्यात्म में आत्मा और परमात्मा को जोड़ने की विद्या है। हमारे शरीर में ताकत, जोश, और स्वास्थ्य, "प्राण ऊर्जा" से बनती है। योग विज्ञान में प्राण ऊर्जा को ब्रह्म ऊर्जा से समर्थ गुरु के द्वारा जोड़ा जाता है। यह शरीर रूपी आत्मा की किरणें, तत्वों के घेरे से पाँच कोषों में स्थिर होकर योनियों में भटक गईं।

प्रथम अवस्था में स्वच्छ तथा निर्मल आत्मा महान शान्त अवस्था में थी जहाँ न दुःख था न सुख, न कोई और उथल-पुथल थी, बल्कि तुरीयातीत अवस्था में विराजमान थी। पुण्य-पाप इत्यादि का भी कोई ताअल्लुक उस आदि से नहीं था, न आनन्द की उस दशा में कोई गति थी। ऐसी अवस्था में वह आदि शक्ति भी महान यथार्थ आनन्द को प्राप्त थी और सब कुछ शून्य अवस्था में था यहाँ तक कि ज्ञान का भी अभाव था। उस महान शान्त आत्मा में, शक्ति-पुंज में, एक से अनेक होने के लिये हरकत हुई और उसने अपना एक मण्डल बना लिया। आत्मा का यह प्रथम ठहराव आनन्दमय कोष या सत् लोक कहलाया।

यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति के लिये हर तरफ से शान्ति की आवश्यकता है और बगैर शान्ति, ज्ञान विकास नहीं होता-अनुभव द्वारा यही ज्ञान आने पर हम उसे विशुद्ध ज्ञान या 'विज्ञान' कहते हैं। सत् चिद् और आनन्द में सत् और आनन्द तो अब यहाँ जाता रहा केवल चिद् शेष रह गया। चिद् के अर्थ ज्ञान या जानकारी के हैं, जो शून्य, महाशून्य और तुरीयातीत अवस्था से नीचे आने पर प्राप्त होता है। वह महान शक्ति संसार की हर चीज में अपना स्थान लेकर "विज्ञानमय कोष" बनाने लगी। ज्ञान होते हुये भी असमर्थता बनी रहती है उसी के आधार पर अच्छी और बुरी वृत्तियाँ जिनको आनन्दमय कोष में आदि शक्ति शैय्या के रूप में दबाये हुये थी वह चेतना एवं चंचलता में आकर द्वैतभाव में आ गयी। इस प्रकार आत्मा अपने दूसरे मण्डल ज्ञान से आगे बढ़ी।

ज्ञान के उदय होते ही उसके अन्दर संकल्प-विकल्प अर्थात् हाँ नहीं के रूप में विकसित होने लगा, जिससे बुद्धि शक्ति के निर्णय में सत्य और असत्य के बीच ठीक रूप सामने आना अति कठिन हो गया और मन में बुद्धी के फैसले को ठुकरा देना अपना कर्त्तव्य बना लिया। आत्मा पर यह जो तीसरा आवरण आया इसे "मनोमय कोष" की संज्ञा दी गयी। यहाँ ज्ञान की किरण जो उसमें शेष थी वह भी लुप्त हो गयी। स्मृति तो है, चाहना भी है परन्तु चारों ओर सुनसान है।

ब्रह्म या ब्रह्माण्डीय मन ने जो ख्याली नक्शे खींचे उसी को मानसिक सृष्टि कहते हैं। इन

ख्याली नक्शों अथवा मानसिक रूपों को जीवन प्रदान करने के लिये यही आदि माया की धार आगे बढ़ी और उसने जीवन तत्व अथवा प्राणतत्व अपने चारों ओर बिखेर दिया। इस तरह जीवन-तत्व का भी धीरे-धीरे चौथा मण्डल बन गया जो "प्राणमय कोष" कहलाया। मन और बुद्धि की शक्तियाँ मोहांधकार में डूब गयीं। सोच विचार की शक्ति नष्ट हो गयी, रास्ते का ज्ञान भी मस्तिष्क से लुप्त हो गया।

मूढ़ जीव को ऊपर का मार्ग दिखाई नहीं दिया, अतएव वह माया के धक्के से नीचे की ओर ही गिरा और अपने चारों ओर धूलि का एक पांचवा मण्डल बना लिया। इसका मण्डल "प्राणमय कोष" के चारों तरफ फैल गया। इस स्थूल आकार को "अन्नमय कोष" की संज्ञा दी गयी।

यहाँ जीव मूढ़ और नारकीय अवस्था को प्राप्त हो जाता है उसको यही व्यथा परेशान किये रहती है। वह ज्ञान कहां गया कैसे मिलेगा, उस स्वस्थ एवं निर्मल आत्मा को दुबारा प्राप्त करने के लिये उलटधार चढ़कर फिर से ऊपर उठना होता है।

ईश्वर एक है और अनन्त रूप में व्यापक है। जिसकी जो भावना है उसी रूप में वह उसको मिलता है। गुरु महाराज ने बताया है कि वही अनन्त ब्रह्म-अनन्त प्रेम और ज्ञान देने वाला है। उसको न वाणी बता सकती है, न दृष्टि देख सकती है और न बुद्धि समझ सकती है। साधारणत: लोग संसार के ज्ञान को ही ज्ञान समझ बैठे हैं।

परिवर्तित समय में भी जो उसे जै समझना चाहते हैं वह उसी में उलझ कर रह ज हैं। यह अपरा ज्ञान है जो तत्वों तक ही पहुंचता परा ज्ञान ही सत्य या शुद्ध आत्मा की आवा होता है। सारा आत्मिक ज्ञान परा विद्या निकला है जिसके अन्दर यह ज्ञान अनुभव द्वा फैलता है वही असल में सत् को पाता है त असली सत्संग होता है। ईश्वर ने मनुष्य को मह शक्तिशाली बनाया है जो एक ओर यदि माया व विस्तार करता है तो दूसरी ओर ईश्वर का प भी बता सकता है। ईश्वर भी मनुष्य के होते हु अकर्ता है। मनुष्य जब तक उस महान शक्ति अपना लगाव न पैदा कर ले तो विरोध बुद्धि स्व कुछ नहीं कर सकती है।

कर्मयुक्त 'साधना' मनुष्य को एक स्थि तक ही ले जा सकती है, किन्तु "सूक्ष्म साधन एवं 'धर्म' उसे लक्ष्य की प्राप्ति अर्थात् "योग करा देते हैं। योग उसी सूरत में होगा जब आत (जीव) और परमात्मा दोनों एक ही रूप दिख दें। आत्मा के ऊपर जो कोषों का आवर चढ़ गया है उसे उतार फेंकना और निज स्वरूप ला देना होता है।

गुरु शक्ति के सहारे ऊपर को चढ़ाई व जाती है। प्रेम रस में अपने को डुबा देने पर गु द्वारा साधक को आत्म ज्ञान प्राप्त करा दिया जा है। साधक को केवल दृष्टा बनकर गुरु की तर उनके प्रकाश को देखना पड़ता है।

इस तरह योग विज्ञान के माध्यम से मन नकारात्मक विचारों आदि का नाश करके "दि प्राण ऊर्जा" गुरु महाराज के द्वारा प्राप्त होती है

सांख्य योग विज्ञान

—श्री उमाकान्त सक्सैना

"सांख्यं वै मोक्षदर्शनम्" सांख्य निश्चय ही मोक्ष दर्शन है (शान्ति पर्व 300/5)। कपिल मुनि साक्षात् भगवान के अवतार हैं। प्राणियों को तत्व ज्ञान का उपदेश करने के लिये सृष्टि के प्रारम्भिक, स्वायम्भुव मनवंतर में ही प्रजापति कर्दम के यहाँ उनकी पत्नि देवहूति से भगवान ने कपिल रूप में अवतार लिया। अपनी माता देवहूति को ही भगवान ने सर्वप्रथम तत्वज्ञान एवं भक्ति का उपदेश दिया। उन्होंने कहा कि बिना भगवान की शरण लिए हृदय शुद्ध नहीं होता। संसार के दुख रूप भोगों से मन को हटाकर भगवान के चरणों में लगाना चाहिये। योगी आत्मा का ब्रह्मरूप से साक्षात्कार करता है। वही आत्मज्ञान स्वरूप है, वही परब्रह्म है, वही परमात्मा है, वही ईश्वर है। सम्पूर्ण संसार में आसक्ति का अभाव हो जाना योगियों के साधन का अभीष्ट फल है। प्रकृति और पुरुष के यथार्थ स्वरूप का बोध नितान्त आवश्यक है। भगवान कपिल ने कहा कि निर्गुण विषयक "ज्ञानयोग" और मेरे प्रति किया हुआ "भक्तियोग" इन दोनों का फल एक ही है। आत्म दर्शन के लिये प्रकृति आदि तत्वों का ज्ञान भी आवश्यक है।

बौद्धमत में यह सभी बातें मानी जाती हैं, बस उन्होंने पुरुष के स्थान पर पुरुष लक्षण सम्पन्न "शून्य" नामक अविकारी एवं गुणशून्य पदार्थ लिया है। यह "शून्य" 'अभाव' पदार्थ नहीं है—यह केवल 'दृश्य-धर्म-शून्य' भाव पदार्थ है। वेदान्त में सांख्य की सभी बातें मान्य हैं। उनके मत में ईश्वर ने ही अपने को जीवरूप में प्रकट किया है। प्रकृति को वह ईश्वर की माया कहते हैं। अद्वैत के समर्थक होकर भी, वह प्रकृति पुरुष की सत्ता मानते हैं।

इसलिये साधक को एक मार्ग दर्शक शान्त, शीलवान, शास्त्रज्ञ एवं तत्वदर्शी गुरु की सभी योगों में अत्यन्त आवश्यकता है। सांख्य में व्यर्थ की कठोर साधना निशिद्ध है—*(महाभारत अनुशा. 145 पृष्ठ /60/3)*

सच्ची सिद्धि तो अन्तःकरण की अत्यन्तिक शुद्धि है जिसमें मनुष्य, संसार के संयोग से मुक्त होता है, और भगवान के सन्मुख होता है। और यही योग है। बुद्धि का नाम 'संख्या' है, इसलिये बुद्धि से धारण करने वाले आत्मतत्व का नाम सांख्य है। जो आत्म विषयक बुद्धि से युक्त है, वह सांख्य है *(रामानुज गीता 3/3)*। कर्मयोग तो केवल ज्ञानयोग को प्राप्त कराता है, आत्मा का साक्षात्कार तो केवल ज्ञान योग ही कराता है। भगवान को जानेंगे तो केवल तत्व ज्ञान से ही जानेंगे।

गीता का सांख्य योगी, माया से उत्पन्न हुए सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बर्तते हैं ऐसा समझकर, मन, इन्द्रिय और शरीर के द्वारा होने वाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्तापन के अभिमान से रहित होकर,

केवल सर्वव्यापी सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप में, अनन्य भाव से, निरन्तर स्थित रहता है। गुण कर्म विभाग के तत्व को जानने वाला सांख्य योगी, गुण ही गुण में बरत रहे हैं ऐसा मानता है, और विषयों में आसक्त नहीं होता। वह ऐसा समझता है कि इन्द्रियाँ ही इन्द्रियों के विषयों में बर्त रही हैं। वह अपने को करने कराने वाला न मानकर, सुख से रहता है। वह सब भूतों में आत्मा को और सब भूतों को आत्मा में देखता है। वह एकत्व भाव में स्थित रहता है और सब प्राणियों में स्थित परमात्मा को देखता है और भजता है। कर्म तो प्रकृति के द्वारा हो रहे हैं और आत्मा अकर्ता है। जब वह दृष्टा पुरुष गुणों से भिन्न दूसरों को कर्ता नहीं देखता तथा आत्मा को गुणों से परे अकर्ता समझता है तब वह ब्रह्म भाव को प्राप्त होता है। तब जीवात्मा अपने जीवत्व को त्याग, अमृत रूप आत्मा का अनुभव करता है *(गीता 14/20)*। जिस पुरुष के मन में मैं करता हूँ ऐसा भाव नहीं है, तथा 'इसके फल से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और वह कर्म भी उसका नहीं है'; तो वह पुरुष सब लोगों को मारकर भी वास्तव में उनको नहीं मारता और न कर्म से बंधता है। वह सन्यास से युक्त होकर परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है और वह ब्रह्म को प्राप्त हो जाता है जो कि ज्ञान की परानिष्ठा है। सांख्य योगी विशुद्ध बुद्धि से युक्त हो, धृति से मन को वश में करके, शब्दादि विषयों को त्यागकर, राग-द्वेष को नष्ट करके, एकान्त सेवी, अल्पाहारी, तन-मन-वचन को वश में करने वाला होकर, नित्य ध्यान योग परायण हो, वैराग्य का भली भाँति आश्रय ले अहंकार, बल, दर्प, क्रोध और परिग्रह को छोड़कर तथा ममता से रहित होकर, ब्रह्मभाव का पात्र हो जाता है। ऐसों को ही 'ब्रह्मभूतः प्रसन्नात्मा' कहा गया है। वह न शोक करता है, और न आकांक्षा करता है। सब भूतों में सम हुआ वह अपने आराध्य में अत्यन्त प्रेम के अनुरूप पराभक्ति को पा जाता है। उस अनन्त का आश्रय करके वह सांख्य योगी, परमात्मा की कृपा से समस्त काम्य कर्मों को भी करता हुआ, अखण्ड शाश्वत पद को प्राप्त हो जाता है।

गीता का उपदेश शरीर और शरीर के भेद से आरम्भ होता है *(गीता 2/11)*। भगवान ने अर्जुन को सबसे पहले यह उपदेश दिया कि देह और देही (जड़ शरीर और चेतन्य आत्मा) अलग-अलग हैं। जब तक यह भेद हम स्वीकार नहीं करेंगे, कल्याण नहीं हो सकता। शरीर की सजातीयता संसार के साथ है, और शरीरी की सजातीयता आत्मा के साथ है। "मैं शरीर हूँ" यह मानना मनुष्य बुद्धि नहीं, प्रत्युत पशुबुद्धि है *(श्रीमद्भ० 12/5/2)*। इस प्रकार गीता का उपदेश सांख्य के निरूपण से प्रारम्भ होता है। देह का, अचित जड़ वस्तु का, असत्ता ही स्वरूप है और आत्मा का, चेतन का सत्ता ही स्वरूप है *(रामा० पृष्ठ/31)*। असत की सत्ता विद्यमान नहीं है, और सत का अभाव विद्यमान नहीं है। ज्ञान सम्पन्न तत्वदर्शियों द्वारा ऐसा देखा गया है। (उभयोरपि, दृष्टः)। देही नित्य और अवध्य है। शरीरी के विभाग को जानकर, शरीर विभाग से सम्बन्ध विच्छेद करना सांख्य ज्ञान है। ऐसा

साधक परमात्मा में स्थित, स्थिर बुद्धि वाला मनुष्य, समस्त कामनाओं को त्याग कर, अपने आपसे, अपने आप में ही सन्तुष्ट रहता है। उसकी बुद्धि इस प्रकार प्रतिष्ठित हो जाती है कि "मैं परब्रह्म परमात्मा हूँ" (श्री शंकराचार्य)। परमात्मा का अनुभव होने से उसकी संसार में रस बुद्धि नहीं रहती *(गीता 2/59)*। उसकी दृष्टि में ब्रह्मलोक तक सम्पूर्ण संसार विद्यमान है ही नहीं। यह ब्राह्मी स्थिति है। निर्मम-निरहंकार होने से उसे तत्वज्ञान हो जाता है।

महाभारत में और गीता में *(3/4-5)* यह स्पष्ट है कि सांख्य और योग अलग-अलग नामों से वर्णित जरूर हैं, पर वास्तव में दोनों एक ही हैं। बिना योग के सांख्य साधन रूप से कठिन है। योग युक्त होकर मुनि शीघ्र ही ब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं *(गीता 5/6)*। दोनों का आरम्भ और अंत एक ही स्थान पर होता है। हाँ, बीच में सांख्य एक सीधे कठिन रास्ते से जाता है। गीता में ज्ञानयोग, ज्ञाननिष्ठा, कर्म सन्यास, अकर्म आदि नामों से सांख्य निष्ठा का वर्णन है। उपासना में, योगी का ध्येय "तत्वमसि" है; जबकि सांख्य का ध्येय है "अहं ब्रह्मास्मि"। ●●

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का भण्डारा/सत्संग कार्यक्रम

1. वैद्यनाथ धाम (देवघर) झारखण्ड

दिनांक	:	22 (प्रात: से), 23 एवं 24 नवम्बर 2015
सत्संग स्थल	:	के. के. एन. स्टेडियम वैद्यनाथ धाम (देवघर) प्राइवेट बस स्टैण्ड के पास
सम्पर्क सूत्र	:	श्री जय प्रकाश सिंह मो. 09431385010, 08969101160
ठहरने का स्थान	:	बरनवाल सेवा सदन, केशरवानी धर्मशाला मारवाड़ी काँवर संघ, श्याम कीर्तन मंडल

2. राजनंद गाँव (उड़ीसा)

दिनांक	:	30 नवम्बर 2015 (सायं से) 1 एवं 2 दिसम्बर 2015
सत्संग स्थल	:	महेश्वरी भवन, रामाधीन मार्ग
सम्पर्क सूत्र	:	श्री देवादास सूर्यवानी, मो. 08085800602 श्री गोविन्द मालानी, मो. 09425240011

3. गुड़गाँव (हरियाणा)

दिनांक	:	11 (सायं से), 12 एवं 13 दिसम्बर 2015
सत्संग स्थल	:	वैश्य समाज धर्मशाला सेक्टर-4
सम्पर्क सूत्र	:	श्री रामचन्द्र मो. 09416114799, श्री लक्खी सिंह 09212548467 श्री मनोज शर्मा 09350173077

दरवेश–गीत

—श्रीबृजनन्दन सहाय

तेरे दर का दरवेश हूँ मेरे दाता
नमन के सिवा और क्या भेंट दूँ मैं।

ये श्रद्धा की माला सुमन स्नेह सिंचित,
चरण कंज में नाथ सादर समर्पित।
ये स्वीकार कर लो हे परम संत गुरुवर,
प्रभो! आर्त्त विनती हृदय से करूँ मैं॥ तेरे दर ०॥

चरण में गिरा हूँ शरण में लगाओ
गहो बाँह गुरुवर पतित को उठाओ।
ये जीवन बने नित्य पूजन तुम्हारा,
प्रणत दीन 'मोहन' विनय यह करूँ मैं॥ तेरे दर ०॥

कृपा–वारि से हम सबों को नहलाओ,
विभा रूप मणिमय सभी को दिखलाओ।
परम भक्ति का दान दो हर हृदय को,
दयासिन्धु! अभ्यर्थना यह करूँ मैं॥ तेरे दर ०॥

रामाश्रम सत्संग, मथुरा, उपकेन्द्र दिल्ली
परमपूज्य गुरुदेव के जन्मोत्सव के शुभ अवसर पर ज्योति पर्व का आयोजन

दिनांक : 1 (सायं से), 2 एवं 3 नवम्बर 2015 को
सत्संग स्थल : अलंकार बारात घर, दशहरा ग्राउण्ड, गीता आश्रम मंदिर के निकट दिल्ली कैंट, सदर बाजार
सम्पर्क सूत्र : श्री एस. के. भारद्वाज मो. 09811085230
श्री एन. सी. शर्मा मो. 09868844440
श्री डी. पी. गुप्ता मो. 09310134982

समाचार इधर-उधर के

शरीर के लिये संजीवनी है किशमिश

इसमें न सिर्फ अंगूर के गुण विद्यमान होते हैं, बल्कि दूध के भी लगभग सभी तत्व पाये जाते हैं। वृद्धावस्था में इसका नियमित इस्तेमाल करने से न सिर्फ बीमारियों से शरीर की रक्षा होती है अपितु उम्र वृद्धि में सहायक भी होता है। आयुर्वेद के अनुसार, किशमिश की शर्करा शरीर में शीघ्र ही पचकर आत्मसात् हो जाती है जिससे शक्ति और स्फूर्ति प्राप्त होती है। कठोर परिश्रम, कुपोषण अथवा किसी बड़ी बीमारी के पश्चात् जब हमारे शरीर की शक्ति क्षीण हो जाती है, तब खोई हुई ऊर्जा को पुनः हासिल करने के लिए किशमिश रामबाण साबित होती हैं। क्षीण होती शक्ति को दुरुस्त करने में किशमिश अपनी अहम भूमिका निभाती है। किशमिश खाने से जहाँ कब्ज, अनीमिया, बुखार और यौन रोग जैसे कई गंभीर रोगों का जोखिम कम हो जाता है, वहीं यह वजन बढ़ाने में भी मददगार है। इसमें आयरन, पोटेशियम, मैग्नीशियम और फाइबर भरपूर मात्रा में मौजूद होते हैं जो शरीर स्वस्थ्य रखने हेतु लाभकारी हैं।

किशमिश कोलेस्ट्राल के स्तर को कम करने और रक्तचाप को घटाने में मदद करता है। रात्रि में जल में भिगोकर शर्बत बनाकर सुबह शाम सेवन करने से पित्तशमन, वायुअनुलोमन तथा मल निस्सारण जैसे रोगों में भी लाभदायक होता है। किशमिश रक्तपित्त, दाह एवं जीर्णज्वर को खत्म करने में रामबाण औषधि है। यह मुंह में होने वाले हानिकारक बैक्टीरिया की वृद्धि को भी रोकता है। यदि शराब के स्थान पर 10-12 ग्राम किशमिश नित्य चबाकर खाएं तो चंद दिनों में ही शराब पीने की लत से पूर्णतः मुक्त हो जायेंगे।

रोजाना किशमिश खाने से आँखों की रोशनी में बढ़ोतरी होती है, इसलिए यह आँखों के लिए संजीवनी है। यह कैल्शियम का अच्छा स्रोत होने के कारण हमारी हड्डियों को मजबूती प्रदान करता है। किशमिश गठिया और गुर्दे की पथरी को रोकने के उपचार में बहुत लाभदायी है।

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्र भोपाल का सत्संग कार्यक्रम

दिनांक	:	12 (सायं से), 13 एवं 14 अक्टूबर 2015
सत्संग स्थल	:	एम्स अस्पताल के सामने, सामुदायिक भवन सेक्टर-2A, साकेत नगर
सम्पर्क सूत्र	:	डा० रवि श्रीवास्वत, मो. 09425121309 फोन 0755-2452386

रामाश्रम सत्संग, मथुरा के उपकेन्द्रों का भण्डारा

1. लखनऊ :

दिनांक : 20, 21 एवं 22 अक्टूबर 2015
सत्संग स्थल : E-1382 सत्संग पार्क, राजा जी पुरम
सम्पर्क सूत्र : श्री के० सी० श्रीवास्तव मो. 09454856733
श्री प्रेमशंकर मो. 09336516835

नोट—चारबाग रेलवे स्टेशन से सत्संग स्थल तक आने-जाने के लिए बस उपलब्ध रहेगी।

2. शाहजहाँपुर :

दिनांक : 15, 16 एवं 17 नवम्बर 2015
सत्संग स्थल : बाबा विश्वनाथ यात्री निवास, टाउन हाल रोड, शाहजहाँपुर
सम्पर्क सूत्र : श्री रघुवर दयाल अग्रवाल मो. 9307182888
श्री श्याम मोहन टण्डन मो. 9936603535

3. जबलपुर :

दिनांक : 27, 28 एवं 29 नवम्बर 2015
सत्संग स्थल : स्मृति भवन, साकेत नगर,
बड़ी ऊखरी, एम० आर०-4 रोड
सम्पर्क सूत्र : श्री सतपाल कोहली मो. 0989330736[illegible]
फोन : 0761-2411362

4. मुगलसराय :

दिनांक : 24, 25 एवं 26 दिसम्बर 2015
सत्संग स्थल : रवि नगर, काली मंदिर के पास
सम्पर्क सूत्र : मो. 9450247691, 9450959888
ठहरने का स्थान : अग्रवाल सेवा संस्थान, जी.टी. रोड, मुगलसराय

दिवंगत आत्माओं के लिए प्रार्थना

परम पूज्य श्री गुरु महाराज से प्रार्थना है कि जून व जुलाई 2015 माह के दौरा[illegible] रामाश्रम सत्संग (मथुरा) से सम्बन्धित सभी दिवंगत आत्माओं को निजधाम में स्थान [illegible] एवम् शोक संतप्त परिवारीजनों को धैर्य धारण करने की शक्ति प्रदान करें।

वर्ष : 83 [सितम्बर-2015] अंक : 2

राजस्थान तथा बिहार सरकार द्वारा स्वीकृत

✳ साधन के नियम ✳

1. गूढ़ तथा अनुभवी गुप्त रहस्यों को सरल भाषा द्वारा जनता तक पहुँचाना तथा सदाचार की शिक्षा देना "साधन" का मुख्य उद्देश्य है।
2. साधन प्रत्येक मास की 20-21 तारीख को प्रकाशित होता है। जिन ग्राहकों को पत्रिका अगले माह की 20 तारीख तक न मिले, उन्हें डाकखाने तथा कार्यालय से सम्पर्क करना उचित है। अंक न मिलने पर एक माह के अन्दर सूचित करने पर अंक दोबारा भेज दिया जायेगा।
3. साधन में आध्यात्मिक, सामाजिक तथा शारीरिक उन्नति के लेख ही छापे जायेंगे। राजनैतिक तथा अश्लील लेख भेजने का कोई भी सज्जन कष्ट न करें।
4. लेखों को घटाने-बढ़ाने और छापने, न छापने का अधिकार सम्पादक का रहेगा, परन्तु लेख प्रकाशित नहीं होने पर सम्पादक उत्तरदायी नहीं होगा। लेख सरल भाषा में कागज के एक ओर ही स्वच्छ लिखे हों।
5. ग्राहकों को पता व ग्राहक नम्बर साफ़-साफ़ लिखना चाहिए। उत्तर के लिए जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है।
6. साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 150/- है। एक प्रति का शुल्क रुपये 16/- है। केवल विशेषांक का शुल्क रुपये 20/- है। भारतवर्ष से बाहर दूसरे देशों में रहने वालों के लिए साधन का वार्षिक शुल्क रुपये 1400/- है। एक वर्ष से कम के ग्राहक नहीं बनाये जायेंगे।
7. दस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 1350/- है और बीस वर्षीय अवधि की सदस्यता शुल्क रुपये 2500/- है।
8. साधन का वार्षिक शुल्क साधारण मनीआर्डर, ई. एम. ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक (जो मथुरा में देय हो) द्वारा भेज सकते हैं, जो "साधन हिन्दी मन्थली" के नाम 813, डैम्पियर नगर, मथुरा-281001 को भेजा जाये।
9. सत्संग साहित्य जो आप मंगाना चाहते हैं उसका कुल मूल्य एवं डाकखर्च कार्यालय से पता कर मनीआर्डर, ई.एम.ओ., डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा चैक द्वारा भेजकर मंगाया जा सकता है।

Licence To Post without Prepayment Licence No. - AGRA/WPP-01/2015-2017
"Registered" Postal Regd. No. MTR / 28 /15-17 R. N.I. No. - 2358 / 57
Date of Publication : 8th to 15th of Every Month

साधन

ॐ

मथुरा

प्रबन्ध सम्पादक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, मथुरा
प्रकाशक : आलोक कुमार, साधन हिन्दी मन्थली, डैम्पियर नगर, मथुरा
मुद्रक : आलोक कुमार, साधन प्रेस, डैम्पियर नगर, मथुरा

E-mail: sadhanhindimonthly@gmail.com, sadhanhindimonthly@yahoo.co.in
Website: www.sadhan.in, www.facebook.com/sadhan.ramashram
Ph.: 0565-3290790, Mob.: 09319680800